अध्याय–10
फलोत्पादन
(Fruit Production)

आम *(MANGO)*

वानस्पतिक नाम *(Botanical name)* : **मैंजीफेरा इंडिका एल.** *(Mangifera indica* L.)

कुल *(Family)* : **एनाकार्डिएसी** *(Anacardiaceae)*

गुणसूत्र संख्या *(Chromosome no.)* : $2n = 4x = 40$

उद्गम स्थल (Centre of origin) : **भारत–बर्मा** (Indo Burma)

फल प्रकार (Fruit Type) : **अष्ठिल** (Drupe)

खाया जाने वाला भाग (Edible part) : **मध्य फल भित्ती** (Mesocarp)

हमारे देश में उगाये जाने वाले फलों में आम सबसे अधिक लोकप्रिय है। इसी कारण इसे फलों का राजा कहा जाता है। इसका फल विटामिन 'ए' (4800 आई.यू.) का श्रेष्ठ स्रोत है। ताजा फल के उपयोग के अलावा इसका उपयोग अचार, अमचूर, चटनी, स्क्वेश तथा मुरब्बा आदि उत्पाद बनाने में भी किया जाता है। आम उत्पादन में भारत का विश्व में प्रथम स्थान है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & Soil)

आम के लिये उष्ण व उपोष्ण जलवायु उपयुक्त मानी गई है। इसके लिये वे क्षेत्र सर्वाधिक उपयुक्त हैं जहाँ जून से सितम्बर तक पर्याप्त वर्षा होती है तथा पुष्पन व फलन के समय मौसम साफ रहता हो। आम की वृद्धि के लिये 24–27° से. तापक्रम सर्वाधिक उपयुक्त रहता है। बहुत कम व अधिक वर्षा वाले स्थान आम की खेती के लिये उपयुक्त नहीं माने जाते हैं।

आम की उचित बढ़वार एवं फलन के लिये जीवांशयुक्त गहरी बलुई दोमट मिट्टी जिसमें जल निकास की उचित व्यवस्था हो, उपयुक्त रहती है। ऐसी भूमि जिसके 2 मीटर गहराई तक अवरोध न हो आम उत्पादन के लिये अच्छी रहती है। भूमि का पी. एच. मान 6.5 से 7.5 होना आम उत्पादन के लिये उत्तम रहता है। चूनायुक्त, कंकरीली, पथरीली व ऊसर भूमि इसकी खेती के लिये अनुपयुक्त रहती है।

उन्नत किस्में (Improved Varieties): उत्तरी भारत में

अगेती – बाम्बे ग्रीन (सरोली) व केसर

मध्यम – लंगड़ा, दशहरी, मल्लिका व आम्रपाली

पिछेती – चौसा व फजली

अन्य किस्मों में पूसा अरूणिमा, पूसा सूर्या, पूसा लालिमा, पूसा श्रेष्ठा, पूसा प्रतिभा व पूसा पीतांबर किस्में भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली तथा अम्बिका व अरूणिका, सी. आई.एस.एच., लखनऊ से विकसित की गयी हैं। भारत से निर्यात अल्फान्सो (हापुस) किस्म का तथा अधिकतम उत्पादकता वाली किस्म तोतापुरी (बैंगलोरा) है। सिन्धू नामक आम की संकर किस्म (रत्ना X अल्फान्सो) लगभग बीज रहित (6 ग्राम की अवशेष मात्र गुठली) होती है जिसे फल अनुंसधान केन्द्र, वैनगुरला, बी.एस.के. वी. दापोली (महाराष्ट्र) ने विकसित की है।

प्रवर्धन (Propagation)

आम को बीज व वानस्पतिक विधियों द्वारा प्रवर्धित किया जा सकता है। आम की व्यावसायिक किस्में एकल भ्रूणता (monoembryony) वाली तथा मूलवृन्त के रूप में उपयोग में आने वाली किस्में बहुभ्रूणता (Polyembryony) वाली हैं जैसे चन्द्र किरण, मूलगोवा, ओल्यूर, बप्पाकाई, एम 13–1, वल्लाईकोल्मबन जो बौनापन व लवणीय सहनशीलता दर्शाती हैं। अच्छे गुणों वाले इच्छित पौधे तैयार करने के लिए वानस्पतिक विधियों का ही प्रयोग किया जाता है। इन विधियों में इनार्चिंग, वीनियर ग्राफ्टिंग, सॉफ्टवुड ग्राफ्टिंग एवं स्टोन ग्राफ्टिंग प्रमुख है। यहाँ वीनियर व स्टोन ग्राफ्टिंग का विस्तृत वर्णन किया जा रहा है।

वीनियर ग्राफ्टिंग : यह आम के प्रवर्धन की सरल विधि है एवं व्यावसायिक तौर पर अपनायी जा सकती है। वीनियर ग्राफ्टिंग के लिए मूलवृन्त इनार्चिंग के समान ही तैयार किये जाते है। इसके लिए मूलवृन्त में 20 सेमी. ऊँचाई के निचले हिस्से पर 3–4 सेमी. लम्बा चीरा लगावें। चीरे के आधार पर एक आड़ा चीरा और लगावें जिससे कटा हुआ लकड़ी का टुकड़ा बाहर आ जाए। सांकुर शाखा पर एक तरफ लम्बा कलम के आकार का चीरा लगावें तथा दूसरी तरफ छोटा कट लगावें। मूलवृन्त मे कटी

सांकुर शाखा को ठीक से बैठा देवें तथा पॉलीथीन की पट्टियों (200 गेज) से बाँध देवें। मूलवृन्त का ऊपरी भाग लगभग

10 दिन बाद काट देवें। वीनियर ग्राफ्टिंग करने का कार्य भी इनार्चिंग की तरह जुलाई माह में ही उपयुक्त रहता है।

कलम बंधन हेतु वांछित किस्म की 5–6 माह पुरानी स्वास्थ्य शाखाओं (प्ररोह) का उपयोग करना चाहिए। सांकुर शाख की पत्तियों को कलम बांधने के एक सप्ताह पूर्व डण्ठल छोड़ते हुए हटा दिया जाता है। सांकुर प्ररोह जिनमें शीर्ष कलिका फूल गयी हो (फूटने से पूर्व स्थिति में) मातृ वृक्ष से प्रातः अथवा सायंकाल में एकत्रित कर लेनी चाहिए। इस सांकुर शाख को अखबार में या किसी अन्य पेपर में लपेट कर टाट के टुकड़े में रख कर पानी का ऊपर से छिड़काव कर नम बनाये रखते हैं तथा इनका उपयोग कलम बंधन के लिए कर सकते हैं।

- स्टोन या इपिकोटाइल ग्राफ्टिंग :– इस विधि में गुठली के अंकुरित होते ही 8–15 दिन के अन्दर बीजू पौधे वाले मूलवृन्त में लगभग इसी मोटाई की सांकुर को वेज (खूँटें) का आकार बनाते हुए तथा मूलवृन्त में इसे लगाने हेतु चीरा लगाकर फँसा दिया जाता है। सफल कलम 2–4 सप्ताह में बढ़वार शुरू कर देती है। महाराष्ट्र के कोंकण क्षेत्र की प्रचलित विधि हैं।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

उन्नत विधियों द्वारा प्रवर्धित किये गये पौधों का वर्षा ऋतु (जुलाई–अगस्त) में रोपण किया जाना चाहिए। उद्यान भूमि को समतल कर रोपाई के एक माह पूर्व 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे 10×10 मीटर की दूरी पर खोदकर उन्हे खुला छोड़ देवें। प्रत्येक गड्ढे में 25 किलो सड़ी हुयी गोबर की खाद एक किलोग्राम सुपर फास्फेट तथा 50–100 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिट्टी में अच्छी तरह मिलाकर गड्ढा पुनः भर देवें। संकर किस्मों को कम दूरी पर भी लगाया जा सकता है (आम्रपाली या अन्य बौनी किस्म को 2.5× 2.5 मीटर की दूरी पर तथा दशहरी को सघन बागवानी हेतु 5.0×5.0 मीटर अन्तराल)।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

आम की उचित बढ़वार के लिए पर्याप्त मात्रा में खाद, उर्वरक एवं अन्य पोषक तत्वों का प्रयोग आवश्यक होता है। अधोलिखित तालिका के अनुसार आम के वृक्षों में खाद देनी चाहिए। गोबर की खाद को दिसम्बर तथा सुपर फॉस्फेट व म्यूरेट ऑफ पोटाश को जनवरी माह में देना चाहिए जबकि नत्रजन की आधी मात्रा फूल आने के बाद व शेष आधी मात्रा फल तोड़ लेने के बाद देनी चाहिए। जस्ते की कमी होने पर 0.3 प्रतिशत जिंक सल्फेट के तीन छिड़काव पुष्पन के पश्चात् करना चाहिए। (सारणी 10.1)

सारणी 10.1 : खाद एवं उर्वरक

खाद व उर्वरक	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	तृतीय वर्ष	चतुर्थ वर्ष	पंचम वर्ष व बाद में	देने का समय
गोबर की खाद	15	30	45	60	75	दिसम्बर
सुपर फॉस्फेट	0.25	0.50	0.75	1.00	1.00	जनवरी
म्यूरेट ऑफ पोटाश	–	–	–	0.25	0.50	जनवरी
यूरिया	0.25	0.75	0.75	1.00	1.25	आधा भाग फूल आने के बाद (मार्च) व शेष जून

कटाई–छँटाई (Training & pruning) : पौधों को उचित आकार देने हेतु कटाई–छँटाई अति आवश्यक है। यदि पेड़ की शाखाएँ अधिक नीचे से निकल रही हों तो उसे कटाई–छँटाई द्वारा हटा देना चाहिए। पौधे को सही आकार देते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि मुख्य तने से 75–100 सेमी. ऊँचाई तक शाखाएँ नहीं निकले और आगे अलग–अलग दिशाओं में मुख्य शाखाओं के बीच में 20 से 25 सेमी. का अन्तर रहे। ऐसी शाखाएँ जो आपस में एक–दूसरे के समानान्तर जा रही हों काट देनी चाहिए।

सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई (Irrigation & interculture) : आम के बाग में वर्षा ऋतु को छोड़कर गर्मियों में प्रति सप्ताह तथा शीत ऋतु में 15 दिन के अन्तराल पर सिंचाई करनी चाहिये परन्तु नये लगाये गये पौधों को (बरसात छोड़कर) 3–4 दिन के अन्तराल पर सींचना चाहिए। फल बनते समय भूमि में पर्याप्त नमी होना आवश्यक होता है परन्तु फूल आने से फल बनने तक सिंचाई नही करनी चाहिए।

आम के बगीचों को खरपतवारों से होने वाले नुकसान से बचाने के लिए व भूमि की उर्वराशक्ति बनाये रखने के लिए निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है। आम के बगीचों में प्रतिवर्ष 2–3 जुताई करके खरपतवार रहित कर देना उपयुक्त रहता है। आम के बगीचे में प्रारम्भिक 3–4 वर्ष तक अन्तःफसलें उगायी जा सकती हैं। अन्तःफसल उगाने से कृषकों को

अतिरिक्त आमदनी प्राप्त होने के साथ–2 आम के पौधे का रखरखाव भी अच्छी तरह से हो जाता है। अंतः फसल हेतु हो सके तो दलहनी फसलों का उपयोग करना चाहिए। इसके लिए ग्वारफली, लोबिया, मूंग, उड़द, मटर, चना (दलहनी फसलें), सब्जियों में पत्तागोभी, फूलगोभी, टमाटर, बैंगन, भिण्डी आदि तथा फूलों में गेंदा, रजनीगंधा, ग्लैडियोलस, मसालों में मिर्च, हल्दी, प्याज, लहसुन एवं अदरक आदि अन्तः फसल के रूप में ली जा सकती हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection)

आम की फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियों मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – (सारणी 10.2)

कार्यिकीय विकार (Physiological disorder)

- **पुष्पशीर्ष विकृति (मेंगों मालफोर्मेशन) या गुच्छा–मुच्छा रोग :** इस रोग से प्रभावित पत्तियाँ एवं पुष्पक्रम गुच्छों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं व पौधे की बढ़वार रूक जाती है तथा उपज पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। अभी तक इस रोग के स्पष्ट कारणों का पता नही चल सका है। अतः इसे कवक, माइट कीट, हार्मोन असंतुलन व वातावरणीय कारक से होने वाला विकार मानते हैं, परन्तु इसके प्रभाव को कम करने के लिए रोगी भाग को नष्ट करने के साथ 200 पी.पी.एम. अल्फा–नेफ्थेलीन एसीटिक अम्ल का छिड़काव सितम्बर–अक्टूबर माह मे करना चाहिये तथा शीघ्र आने वाले (अगेती) पुष्पक्रम को तोड़ देना चाहिए।
- **ब्लैक टिप :** यह व्याधि आम के उन बगीचों में पाई जाती है जो ईंट के भट्टों के 600 मीटर के क्षेत्र में हों। क्योंकि भट्टों से निकलने वाली विषाक्त गैसें जैसे कार्बन मोनो–ऑक्साइड, एसिटाइलीन, सल्फर डाईऑक्साइड आदि इस विकार के कारक हैं। इससे बचाव के लिये आम के बाग ईंट के भट्टों से दूर लगायें तथा भट्टों की चिमनियाँ ऊँची होनी चाहिये साथ ही कास्टिक सोड़ा (0.8%) या पोटेशियम हाइड्रोक्साइड (0.5%) या बोरेक्स (1%) का छिड़काव लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

सारणी 10.2 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट– मिली बग (*Drosicha mangiferae*)	इस कीट के निम्फ मुलायम टहनियों, पुष्पक्रम तथा छोटे फलों के डण्ठलों पर एकत्रित होकर रस चूसते है।	पेड़ के तने के चारों ओर पोलीथीन की ग्रीस लगी 30–40 सेमी. चौड़ी पट्टी जमीन से 60 सेमी. की ऊँचाई पर लगाये। दिसम्बर माह में खेत की जुताई करें।यदि पेड़ पर मिली बग चढ़ गयी हो तो इमिडाक्लोप्रिड 30.5 एस.सी 1–1.5 मिली दवा प्रति 3 लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
2	आम का फुदका (*Hopper*) (*Amiritodus atkinsoni*)	सर्वाधिक नुकसान पहुँचाने वाला भूरे रंग का बहुत ही छोटा कीट (वयस्क व निम्फ) होता है व आम के फूल, छोटे फल तथा नई वृद्धि का रस चूसता है।	इमिडाक्लोरप्रिड–17.5 एस.एल. दवा 1 मिली प्रति तीन लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करें
3	छाल भक्षक कीट (*Inderbela sp.*)	कीट की इल्ली (Caterpillar) तने में छेद कर छाल को खाती रहती है। तने एंव शाखाओं में सुरंग बना कर वृक्ष को खोखला बना देता है।	रूई को पेट्रोल या केरोसीन या कीटनाशी (क्यूनॉलफॉस–25 ईसी) रसायन में भिगोकर कीट की सुरंगो के अन्दर भर देना चाहिए तथा ऊपर से चिकनी मिट्टी लगा देवें।
4	व्याधि –चूर्णी फफूंद (*Oidium mangiferae*) कवक	टहनियों, पत्तियों व पुष्पक्रमों पर सफेद चूर्ण दिखाई देता है।	घुलनशील गंधक 2.5 ग्राम या कैराथेन 1 मिली. प्रति लीटर पानी में घोलकर दो बार छिड़काव करना चाहिए।
5	श्यामव्रण (*Colletotrichum sp.*) कवक	पत्तियों पर भूरे व काले फफोलेनुमा धब्बे दिखाई देते हैं तथा पत्तियाँ गिरने लगती हैं।	कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम या मेन्कोजेब 2 ग्राम प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करें तथा रोग ग्रस्त टहनियों व पत्तियों को काट कर नष्ट कर देवें।

- **स्पंजी उत्तक :** अल्फान्सो आम की मुख्य समस्या है। कारण : उष्ण क्षेत्रों में भूमि के ताप संवहन से फलों की मध्य फल भित्ति में एमाइलेज एन्जाइम अक्रिय हो जाता है तथा उत्तकों में हवा भर जाती है जिससे फल गल जाता है। इन क्षेत्रों में आम में पलवार (मल्चिंग) तथा 75% परिपक्वता पर तुड़ाई के साथ–2 कैल्शियम क्लोराइड (0.8%) का छिड़काव कारगर रहता है।
- **एकान्तर फलन :** प्रायः आम की फसल में ऐसा देखा गया है कि पूर्ण विकसित आम के वृक्ष एक वर्ष अच्छी उपज देते हैं व दूसरे वर्ष उपज बहुत कम या नहीं होती है। आम के वृक्षों की इस प्रकार की प्रवृत्ति को एकान्तर फलन (Alternate or biennial bearing) कहते हैं। जिस वर्ष अच्छी उपज होती है उसे "ऑन इयर" कहते हैं तथा जिस वर्ष उपज बहुत कम या नही होती है उस वर्ष को "ऑफ इयर" कहते हैं। दशहरी, लंगड़ा, अल्फांसो आदि प्रतिवर्ष फल नहीं देती है। कुछ व्यवसायिक किस्मों का आनुवांशिक गुण है यद्यपि नीलम, बैंगलोरा आदि प्रतिवर्ष फल देती हैं किन्तु इनकी गुणवत्ता स्तरीय नहीं होती।

नियंत्रण के उपाय –

1. उचित समय पर खाद, उर्वरक एवं वृद्धि नियंत्रकों का प्रयोग तथा सिंचाई, निराई, गुड़ाई तथा कीट एवं व्याधियों पर नियंत्रण से अनियमित फलन की समस्या को कम किया जा सकता है।
2. नियमित फल देने वाली किस्में जैसे आम्रपाली, मल्लिका, रत्ना आदि किस्मों का रोपण करना चाहिए।
3. कुछ शाखाओं के फूल फल बननें से पूर्व ही तोड़ दिये जाए तथा शेष को फलने दिया जाए तो अगले वर्ष जिनमें फलन नही लिया गया है उनमें फलन होगा तथा उत्पादन में प्रतिवर्ष सन्तुलन बना रहेगा।
4. सितम्बर अक्टूबर माह में पेक्लोब्यूट्राजोल (5–10 ग्राम/वृक्ष) मृदा में मिलाने से ''ऑफ इयर'' में भी फल बननें की संभावना रहती है।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

आम की परिपक्वता 75 प्रतिशत होने पर तुड़ाई प्रातः 7–11 बजे तथा अपराह्न 3–7 बजे के मध्य की जाये। फलों को एक जैसा पकाने हेतु 100–500 पी. पी. एम. इथरेल गुनगुने पानी के घोल में 5 मिनट तक उपचारित कर छाया में सुखाया जाये।

आम के एक वयस्क पौधे से 80 से 100 किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते है वैसे पैदावार पेड़ की उम्र, किस्म तथा बगीचे की देखभाल पर भी निर्भर करती है। राष्ट्रीय स्तर पर इसकी प्रति हेक्टेयर उपज 8–9 टन तक होती है। इसके फलों को 5–16 डिग्री सेल्सियस तापक्रम व 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 2–3 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

नींबू (Lime)

वानस्पतिक नाम (Botanical Name) :
सिट्रस ऑरेन्टीफोलिया स्विंगल
***(Citrus aurantifolia* Swingle.)**
कुल (Family) : रूटेसी (Rutacae)
गुणसुत्र संख्या (Chromosome No.) : X = 9   2n = 18
फल प्रकार (Fruit type) : हेस्पेरीडियम सरस (Berry)
खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
रसीले प्लेसेन्टल रेशे
उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : भारत (India)

नींबू सम्पूर्ण भारत में उगाया जाता है तथा नींबू वर्गीय फलों में संतरा तथा मौसमी के बाद तीसरा मुख्य फल है। विश्व में भारत नींबू उत्पादन में प्रथम स्थान रखता है। इसे आंघ्रप्रदेश, बिहार, गुजरात, तमिलनाडु, मध्यप्रदेश आदि राज्यों में प्रमुखता से उगाया जाता है।

जलवायु व भूमि (Climate & Soil) :

नींबू की खेती उष्ण से शीतोष्ण जलवायु तक सफलतापूर्वक की जा सकती है। शुष्क एवं अर्धशुष्क क्षेत्र जहाँ पानी की सुविधा हो, इसकी खेती के लिए उत्तम रहते हैं। इसकी फसल बागवानी के लिये उपयुक्त तापक्रम 16 से 32° से. है। राजस्थान के उन भागों में जहाँ पाला कम पड़ता है तथा वातावरण नम व जाड़े की ऋतु लम्बी होती है, वहाँ इसकी खेती सफलतापूर्वक की जाती है।

नींबू की खेती सभी प्रकार की मृदाओं में की जा सकती है किन्तु उपजाऊ दोमट भूमि सर्वोतम मानी गयी है। भूमि जीवांश युक्त व 2 मीटर गहरी होनी चाहिए। अधिक रेतीली व चिकनी मिट्टी इसके लिए उपयुक्त नहीं रहती है। भूमि में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

उन्नत किस्में (Improved Varieties) :

भारत में उगाई जाने वाली विभिन्न किस्मों में कागजी, कागजी कलाँ, बारहमासी नींबू, इन्दौर सीडलैस, पन्त लेमन–1

सारणी 10.3 : खाद एवं उर्वरक

पौधे की आयु (वर्ष)	गोबर की खाद (किग्रा.)	यूरिया (ग्राम)	सुपर फॉस्फेट (ग्राम)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम)
1	10	125	250	–
2	20	250	500	–
3	30	375	750	200
4	40	500	1000	200
5	50	625	1250	400

आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कई नयी किस्में जैसे विक्रम व प्रमालिनी (एमएयू, परभनी (महाराष्ट्र) सई शर्बती (एमपी के वी, राहुरी) तथा जयदेवी (तमिलनाडू) व तेनाली (आन्ध्रप्रदेश) आदि विकसित की गयी हैं जो अधिक उपज तथा उत्तम गुणवत्ता वाली हैं।

प्रवर्धन (Propagation) :

नींबू का प्रवर्धन बीज व गूटी दाब विधियाँ व्यावसायिक तौर पर अपनायी जाती है।

पौध रोपण विधि (Planting methods) :

नींबू के पौधे लगाने के लिए मई–जून के महीने में 75×75×75 सेमी. आकार के गढ्ढे 5-6×5-6 मीटर की दूरी पर खोदे जाते हैं। उक्त गड्ढों को 10–15 दिन छोड़ने के बाद प्रत्येक गड्ढे में 20 किलोग्राम गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत पाउडर मिट्टी के साथ मिलाकर पुनः भर देना चाहिए। जुलाई–अगस्त माह में तैयार गड्ढों में पौधे लगाना उपयुक्त रहता है पौधा रोपण के तुरन्त बाद सिंचाई अवश्य करें।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) :

नींबू के पौधों को सारणी 10.3 के अनुसार खाद व उर्वरक देवें–

देशी खाद, सुपर फॉस्फेट तथा म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा व यूरिया की आधी मात्रा फूल आने के 6 सप्ताह पूर्व देवें। यूरिया की शेष आधी मात्रा फल बनने पर देवें।

सिंचाई :

वर्षा ऋतु में प्रायः सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। नींबू में सर्दी में 25 दिन के अन्तराल पर व गर्मी में 15 दिन के अन्तराल में सिंचाई करनी चाहिए। फूल खिलने के समय सिंचाई नहीं करनी चाहिए अन्यथा फूल झड़ने की सम्भावना रहती है।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning) :

प्रारम्भिक अवस्था में निश्चित आकार प्राप्त करने के लिये कटाई–छँटाई करनी चाहिए। साधारणतः नींबू में किसी विशेष कटाई–छँटाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है, परन्तु वर्ष में एक बार रोग ग्रसित, सूखी व एक दूसरे में फसी शाखाओं की कटाई–छँटाई करना चाहिए। तथा नियमित अन्तराल पर जड़ क्षेत्र से काट–छाँट (Root-pruning) दिसम्बर–जनवरी माह में करने पर फरवरी–मार्च में पुष्पन अच्छा होता हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection) : कीट प्रबन्ध (Insect management)

1. नींबू की तितली (Lemon butterfly-*Papilio demoleus* - इस के डिम्भ (Larvae) नर्सरी में व नये पौधों की नयी पत्तियों को खाकर काफी क्षति करते हैं। आरम्भ में ये चिड़ियों के विष्ठा (बीट) की तरह होते हैं जो बाद में बढ़कर 5.0 सेमी लम्बे तथा पत्तियों की भाँति हरे रंग के हो जाते है। इन कीटों से सबसे अधिक क्षति अप्रैल–मई तथा अगस्त से अक्टूबर माह में होती है इसके नियंत्रण हेतु डाइमिथोएट–30 ईसी दवा 1–1.5 मिली प्रति लीटर की दर से छिड़काव करें।

2. पर्ण सुरंगी (Leaf minor-*Phyllocnistis citrella*)– इसके लार्वा पत्तियों में अनियन्त्रित आकार की सुरंगे बनाते हैं जो मुख्यतः कोमल पत्तियों पर आक्रमण करते हैं तथा प्रकाश संश्लेषण क्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है साथ ही ये सिट्रस केंकर रोग का भी वहन करते हैं। इसके नियंत्रण हेतु जब पेड़ो में नये फुटान हो रहे हो तो इन पर (फरवरी–मार्च व मई–जून) डाइमिथोएट–30 ईसी दवा 1–1.5 मिली प्रति लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करके नियंत्रण किया जा सकता है।

व्याधि प्रबंध (Disease management) :– नींबू का केंकर (Citrus canker) यह रोग एक जीवाणु (*Xanthomonas campestris* pv. *citri*) से होता है। इस रोग में पत्तियों, टहनियों व फलों पर हल्के पीले धब्बे दिखाई देने लगते हैं जो बाद में भूरे और खुरदरे व कॉर्कनुमा हो जाते हैं। कागजी नींबू सर्वाधिक प्रभावित होता है नया बाग हमेशा स्वस्थ पौधों से लगायें तथा रोग के फैलाव को कम करने हेतु पर्ण सुरंगी कीट का नियंत्रण करें तथा कटाई–छँटाई के बाद कॉपर ऑक्सीक्लोराइड (2.5–3 ग्राम/लीटर) के साथ स्ट्रेप्टोसाइक्लिन (250 से 500 पीपीएम) की दर से घोल बनाकर मार्च माह में छिड़काव की संस्तुति की जाती है।

उपज एवं भण्डारण (Harvesting and yield) : नींबू का पौधा 3–4 वर्ष की आयु के पश्चात् फल देने योग्य हो जाता है। फलों की तुड़ाई पूर्ण परिपक्व अवस्था में करनी चाहिए। नींबू का रंग हल्का पीला हो जावे तब उन्हें तोड़ लेना चाहिए। पूर्ण विकसित पौधे से लगभग 1000 फल प्रति पौधा व औसतन 50–75 किग्रा प्रति पौधा उपज प्राप्त होती है। नींबू के फलों को 8–10 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 3–6 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

संतरा (Mandarin)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : सिट्रस रेटिकुलाटा बाल्कों (*Citrus reticulata* Balnco.)

कुल (Family) : रूटेसी (Rutaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : X=9 2n=18

फल प्रकार (Fruit type) : हेस्पेरिडियम सरस (Berry)

खाये जाने वाला भाग (Edible part): रसीले प्लेसेन्टल रेशे

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : दक्षिणी चीन (South China)

भारत में नींबू प्रजाति के फलों में संतरे का सबसे महत्वपूर्ण स्थान है इसे मेन्डरिन भी कहते हैं। इसका छिलका फाँकों से चिपका नहीं रहता है अतः आसानी से छीला जा सकता है (Loose Skin orange)। संतरा अपनी सुगंध व स्वाद के लिए प्रसिद्ध है। इससे विटामिन 'सी', 'ए' व 'बी' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका पानक (Squash) बहुत लोकप्रिय उत्पाद है।

जलवायु व भूमि (Climate & soil) : संतरा उष्ण व उपोष्ण जलवायु का पौधा है। जिन क्षेत्रों में वर्षा 75 से 100 सेमी. होती है वहाँ पर इसकी खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है। संतरे के लिए वातावरण में अधिक आर्द्रता होनी चाहिए। अतः इसकी खेती के लिए गर्म एवं नम जलवायु आदर्श है। इसके लिए 23 से 40^{0} सेल्सियस तापक्रम उपयुक्त रहता है। भारत में संतरा की खेती के लिये नागपुर (महाराष्ट्र) विख्यात है।

संतरे की खेती सभी प्रकार की अच्छे जल निकास वाली जीवांश युक्त भूमि में की जा सकती है, परन्तु गहरी दोमट मिट्टी इसके लिए सर्वोतम मानी जाती है। भूमि की गहराई 2 मीटर होनी चाहिये। मृदा का पी.एच. 6 से 8 उचित रहता है। इसकी सफलतम खेती के लिये अवमृदा कंकरीली, पथरीली व कठोर नहीं होनी चाहिये।

उन्नत किस्में (Improved varieties) : भारत में उगाई जाने वाली किस्मों में नागपुरी संतरा, खासी संतरा, कुर्ग संतरा, दार्जिलिंग संतरा, लाहौर लोकल आदि प्रमुख हैं। भारतीय संतरा में नागपुर संतरा सर्वोपरि है एवं विश्व के सर्वोतम संतरा में इसका स्थान है। किंग (*Citrus nobilis*) तथा विलोलीफ (*Citrus deliciosa*) के संकरण से तैयार 'किन्नों' किस्म पंजाब व राजस्थान में व्यावसायिक महत्व की किस्म है।

प्रवर्धन (Propagation) : संतरे का वानस्पतिक प्रवर्धन कलिकायन (शील्ड व पैच) विधि द्वारा किया जाता है। कलिकायन के लिये मूलवृन्त के रूप में जट्टी खट्टी (सीट्रस जम्भिरी), रंगपुर लाइम, क्लिओप्टरा मेन्डेरिन, ट्रायर सिट्रेन्ज तथा करना खट्टा काम में लेते हैं। मूलवृन्त फरवरी–मार्च माह में तैयार किये जाते है,जिन पर कलिकायन सितम्बर–अक्टूबर व फरवरी–मार्च में किया जाता है।

पौध रोपण विधि (Planting method) : कलिकायन किये गये पौधे दूसरे वर्ष जब लगभग 60 सेमी. के हो जाये तो पौधारोपण हेतु उपयुक्त माने जाते हैं। संतरे के पौधे लगाने के लिए 90 घन सेमी. आकार के गड्ढे मई–जून में 6×6 मीटर की दूरी पर खोदे जाते हैं। उत्तरी भारत में पौध लगाने का समय जुलाई–अगस्त है तथा पौध लगाने से पूर्व प्रत्येक गड्ढे को 20 किलोग्राम गोबर की खाद, 1 किलोग्राम सुपर फास्फेट व मिट्टी के मिश्रण से भरना चाहिए। दीमक के नियंत्रण के लिए क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण 50–100 ग्राम प्रति गड्ढा देना चाहिए।

सारणी 10.4 : खाद एवं उर्वरक

पौधे की आयु	गोबर की खाद (किग्रा.)	यूरिया (ग्राम)	सुपर फॉस्फेट (ग्राम)	म्यूरेट ऑफ पोटाश (ग्राम)
एक वर्ष	15	125	250	–
दो वर्ष	30	250	500	–
तीन वर्ष	45	375	750	200
चार वर्ष	60	500	1000	200
पाँच वर्ष	75	625	1250	400

सारणी 10.5 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट–नाशीजीव / ब्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–फल चूसक शलभ (Fruit sucking moth) (*Eudocima sp.*)	रात में सक्रिय रहते हैं तथा फलों का रस चूसते हैं वहाँ से कवक आदि के संक्रमण में फल सड़कर गिर जाते हैं। वर्षा काल में अधिक सक्रिय रहता है।	प्रकाश प्रपंच (Light trape) तथा विष चुगा या प्रलोभक 1:10 (गुड़ / शक्कर में मैलाथियॉन 50 ईसी) मिट्टी के प्याले में (प्रति प्याला 100 मिली) खेत के विभिन्न स्थानों पर टांगे व खेत को साफ सुथरा रखें।
2	सिट्रस साइला (*Diaphorina citri*)	निम्फ (Nymph) पौधे के नई वृद्धियों का रस चूसते हैं साथ ही एक प्रकार का मीठा द्रव छोड़ता है जिस पर काली फफूंद (sooty mould) पनपने से पौधे की प्रकाश संश्लेषण पर बुरा असर पड़ता है।	नियंत्रण डाइमिथोयट 30 ईसी की 800 मिली मात्रा की 500 लीटर पानी की दर से छिड़काव किया जाता है।
3	छाल भक्षक कीट	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
4	नाशीजीव– नींबू मूल ग्रंथी सूत्रकृमि (*Tylenchulus semipenetrans*)	पत्तियाँ पीली तथा टहनियाँ सूखने लगती हैं। जड़ क्षेत्र गुच्छेदार, उस पौधे पर फल छोटे व कम लगते हैं तथा जल्दी गिर जाते हैं ।	ऐसी पौधशाला से पौधे नहीं ले। पौधशाला की मिट्टी का शोधन करें तथा फोरेट 10 जी 5–10 ग्राम प्रति पौधा या तरल रूप में विद्यमान कार्बोफ्यूरान 2–3 मिली प्रति लीटर दर से भूमि का मंजन (ड्रेचिंग) करें।
5	व्याधि – एन्थ्रेक्नॉज (*Colletotrichum gloeosporoides*) कवक	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
6	ग्रीनिंग (Greening) /HLB (Huanglongbing) जीवाणु सदृश्य सूक्ष्मजीवों (BLOs)	संचरण सिट्रस साइला द्वारा होता है। मौसम्बी व टेंजेलो में समस्या है। पत्तियों में हरिमाहिनता व फलन कम तथा परिपक्व नहीं होतें।	स्ट्रेप्टोसाइक्लिन व टेट्रासाइक्लीन जैसे जीवाणुनाशियों का उपयोग किया जाता है
7	गोंदाति (*Gummosis*) (*Phytophthora palmivora*) कवक	मुख्य तने के निचले भाग तथा कभी मुख्य शाखाओं पर गोंद जैसा पदार्थ निकलने लगता है व तने की छाल आवरण विहीन हो जाती है।	बाग में जल निकास की समुचित व्यवस्था करें तथा समय–समयपर मुख्य तने के 50–60 सेमी. ऊँचाई तक बोर्डो पेस्ट का लेपन ,प्रतिरोधी मूलवृन्तों (खट्टी नारंगी, ट्राइफोलिएट तथा रंगपुर लाइम) का उपयोग एवं संक्रमित भाग को छील कर उस स्थान पर बोर्डो लेप (1:2:15) या कॉपर ऑक्सीक्लोराइड लेप (1:10) का प्रयोग करें।
8	ट्रिस्टेजा (Tristeza) विषाणु जनित तीव्र क्षरण (quick decline) रोग है। कागजी नींबू इसका मुख्य सूचक पौधा है।	तने में छाल में गड्ढे (pit) तथा शहद के छत्तेनुमा संरचनायें बन जाती है। जड़ सूख जाता है वृक्ष मर जाता है। रोग संचरण भूरा सिट्रस माहू (*Toxoptera citricida*) द्वारा होता है।	बचाव ही उपाय है जिनमें सहनशील मूलवृन्तों का प्रयोग (रंगपुर लाइम, रफ लेमन, क्लयोपेट्रा, ट्राइफोलिएट ओरेन्ज, सिट्रेंज आदि), माहू का नियंत्रण, प्रवर्धन में विषाणु विहीन कलिका का चुनाव तथा क्रॉस प्रोटेक्सन (Cross protection) में सहनशील पौधों का उपयोग आदि है।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) : सन्तरे के पौधे से उत्तम गुणवता वाले अधिक फल प्राप्त करने के लिये खाद एवं उर्वरकों का उचित प्रबन्धन करना चाहिए। सन्तरे के पौधे में सारणी 10.4 अनुसार खाद व उर्वरक देने की अनुशंसा की जाती है –

गोबर की खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा दिसम्बर–जनवरी में देना चाहिये। यूरिया की 1/3 मात्रा फरवरी में फूल आने से पहले तथा 1/3 मात्रा अप्रैल में फल बनने के बाद और शेष 1/3 मात्रा अगस्त माह के अन्तिम सप्ताह में देवें। सन्तरा में फरवरी व जुलाई माह में गौण तत्वों का छिड़काव करना उचित रहता है। इसके लिये 550 ग्राम जिंक सल्फेट, 300 ग्राम कॉपर सल्फेट, 250 ग्राम मैंगनीज सल्फेट, 200 ग्राम मैग्नेशियम सल्फेट, 100 ग्राम बोरिक एसिड, 200 ग्राम फेरस सल्फेट व 900 ग्राम चूना लेकर 100 लीटर पानी में घोल बनाकर छिड़काव करें।

सिंचाई व अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture) :

सर्दी में दो सप्ताह व गर्मी में एक सप्ताह के अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिए। फल लगते समय पानी की कमी से फल झड़ने लगते हैं। फल पकने के समय पानी की कमी से फल सिकुड़ जाते हैं व रस की प्रतिशत मात्रा घट जाती है। अतः जब सन्तरे का उद्यान फलन में हो तब आवश्यकतानुसार सिंचाई करनी चाहिए। खाद देने के बाद सिंचाई करना परम आवश्यक है। बगीचे को साफ सुथरा रखे तथा दक्षिणी व मध्य भारत में मृदा बहार में पुष्पन रखे परन्तु ऊपरी भारत में वृक्ष शीत सुसुप्तावस्था (Winter rest) होने से वसंत में पुष्पन होता है।

संघाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning) : संतरे का सुन्दर ढांचा बनाने के लिए प्रारम्भिक वर्षो में कटाई–छँटाई की जाती है। फल देने वाले पौधे को कटाई–छँटाई की कम आवश्यकता होती है परन्तु सूखी व रोगग्रस्त टहनियों को काटते रहना चाहिए।

पौध संरक्षण (Plant protection) : फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियाँ में निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.5

फलों का गिरना (Fruit drop)– यह लगभग सभी नींबू वर्गीय फसलों की समस्या है आर्थिक दृष्टि से हानि जब फसल तुड़ाई के 1–1.5 माह पर गिरने लगे तब 2–4 डी सोडियम लवण बागवानी ग्रेड (10 पीपीएम) या एन.ए.ए. (प्लेनोफिक्स) 20–50 पीपीएम का घोल बनाकर छिड़काव हितकर रहता है। इसके अतिरिक्त फलन के समय भूमि में समुचित नमी बनाये रखना चाहिए तथा कवक जनित रोग (एन्थेक्नॉज, गोदाति आदि) का तुरन्त उचित निदान लाभकारी रहता है।

तुड़ाई व उपज (Harvesting & yield) – कलिकायन द्वारा तैयार किये गये पौधे 3–5 वर्ष की आयु में फल देते है। प्रायः पुष्पन के 8 से 9 माह बाद पक कर तैयार हो जाते है। सन्तरे के फलों का रंग हल्का पीला हो जाये तब इन्हें तोड़ लेना चाहिये। सन्तरे की उपज 600 से 800 फल तथा औसतन 70 से 80 किग्रा प्रति पौधा प्राप्त होती है। सन्तरा के फलों को 5–6 डिग्री तापक्रम व 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर 4 महीने तक भण्डारित किया जा सकता है।

केला (BANANA)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : मूसा पेराडिसियाका एल (*Musa paradisiaca* L.)

कुल (Family) : म्यूजेसी (Musaceae)

गुणसूत्र (Chromosome no.) : 2n = 3x = 33

खाये जाने वाला भाग (Edible Part) : मध्य व अन्तः फल भित्ती (Meso-endoearp)

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : भारत तथा मलाया

फल का प्रकार (Fruit Type) : सरस (Berry)

केला प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में उगाया जा रहा है। इसे कल्पतरू, एडम्सफिंग व एपल ऑफ पेराडाइज के नाम से भी जानते हैं। केले का उपयोग फल तथा सब्जी के रूप में किया जाता है। औद्योगिक स्तर पर आटा, चॉकलेट, फिग, चिप्स इत्यादि तैयार किये जाते हैं। विश्व में भारत सबसे बड़ा केला उत्पादक राष्ट्र है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & Soil)

यह उष्ण कटिबन्धीय जलवायु का फल वृक्ष है। इसके लिए गर्म, अधिक आर्द्रता एवं अधिक वर्षा वाले क्षेत्र उत्तम

होते हैं। जहाँ गर्मियों में तेज हवायें चलती हैं व जाड़े में पाला पड़ता है ऐसे क्षेत्र इसकी खेती के लिए उपयुक्त नहीं होते हैं। केले की अच्छी पैदावार के लिए पाला रहित, तेज व गर्म हवाओं रहित क्षेत्र तथा अधिक वर्षा क्षेत्र जो ठीक तरह से वितरित हो उपयुक्त पाये जाते हैं। इस फसल के लिए औसत तापमान 20–30 सेंटीग्रेड उपयुक्त है।

केले की खेती के लिये गहरी उपजाऊ व नमी को अधिक समय तक रोकने वाली भूमि उपयुक्त होती है। समुद्र के डेल्टाओं की रेतीली दोमट, गहरी एलूविअल दोमट व काली कपासीय मृदा केले की खेती के लिए उत्तम होती है। सफल खेती में भूमि का पीएच मान 6.5–7.5 होना चाहिए।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

भारत में केले की किस्मों को मुख्यतः दो समूहों में बाँटा गया है :–

1. **फलों के रूप में प्रयोग की जाने वाली** : पूवन, रसथाली, वीरूपक्षी, चक्रकेली; ड्वार्फ केवेन्डिश, बसराई ड्वार्फ, हरीछाल, रोबस्टा, कारपुरावल्ली (सबसे अधिक मिठास युक्त), लाल केला, हिल बनाना, G-9, सी ओं–1 (संकर किस्म कदली × (म्यूसा बालविसियाना × लेडन) एवं कुन्नन (नवजात शिशुओं के खाद्य उत्पाद बनाने के लिए उपयुक्त)
2. **सब्जी के रूप में प्रयोग की जाने वाली** : पुवन एवं नेन्द्रान (फिग एवं चिप्स बनाने के लिए भी उपयुक्त)

प्रवर्धन (Propagation)

सकर्स द्वारा (Propagation by suckers) : केले में सकर्स दो प्रकार के होते हैं :–

तलवार सकर्स (Sword suckers) : इन सकर्स की पत्तियाँ लम्बी (45 से 60 सेमी.) तलवार की तरह नुकीली व पतली होती हैं। इनसे तैयार पौधा जल्दी बढ़ता है (रोपण के 11 माह में फलन) रोपित सकर्स की उम्र तीन से चार माह की होनी चाहिए तथा वजन 500 ग्राम कम से कम होना चाहिए(साधारणतः वजन 500–750 ग्राम)। इसे रोपण हेतु काम में मुख्यतः लेते हैं।

चौड़ी पत्ती वाले (Water suckers) : ये चौड़ी पत्ती वाले तथा कमजोर सकर्स होते हैं। इनके द्वारा तैयार पौधे धीमी गति से बढ़ते हैं (रोपण के 15 माह में फलन)।

पादप ऊत्तक संवर्धन (Tissue culture) : केले के पौधों के प्रसारण की आधुनिक विधि हैं। इस विधि में अधिक संख्या में शीघ्रता से एक साथ विषाणु रहित पौधे तैयार हो सकते हैं। केले की G-9 किस्म का प्रवर्धन पादप ऊत्तक संवर्धन तकनीक से ही प्रमुखता से किया जा रहा है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

गहरी जुताई कर खेत को अच्छी तरह तैयार करें। 1.5×1.5 मीटर की दूरी पर 30×30×30 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढे खोदें। इन गड्ढों में आधी मात्रा कम्पोस्ट व आधी मात्रा मिट्टी से मिलाकर भरें। 50 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण भूमि–जनित कीटों के नियन्त्रण हेतु गड्ढों में मिलावें। जुलाई की पहली वर्षा के बाद ही सकर्स लगा देने चाहिए। देरी करने से केले की पैदावर पर बुरा असर पड़ता है। सकर्स गड्ढे के बीचों–बीच सायंकाल के समय पूरी तरह जमीन के अंदर लगाकर दबा देने चाहिये एवं सिंचाई कर देनी चाहिए।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

प्रति पौधा 10 से 15 किलोग्राम गोबर की खाद, 150 ग्राम यूरिया, 150 ग्राम सुपर फॉस्फेट तथा 250 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश का प्रयोग उपयुक्त होता है। इस खाद की मात्रा को गाँठें लगाने के 3, 4 व 5 माह बाद बराबर भागों में बांट कर देनी चाहिये। नत्रजन का ह्रास तेजी से होता है अतः इसे 3 से 5 बार, 30–40 दिन के अन्तराल पर देते हैं। फॉस्फोरस का अवशोषण रोपण के 2–3 माह पर अधिक होता है। वहीं पोटाश की मात्रा पुष्पक्रम निकलने के साथ ही बढ़ती है। कई अनुसंधानों के परिणाम में सिद्ध हुआ है कि केले को उर्वरक 1: 1: 4 (नत्रजन : फॉस्फोरस : पोटाश) के अनुपात में देने से अधिकतम उपज प्राप्त होती है।

सिंचाई एवं निराई–गुड़ाई (Irrigation & interculture)

केले को पानी की अधिक आवश्यकता होती है। पौधे रोपण के तुरन्त बाद यदि वर्षा नहीं होती है तो सिंचाई कर देनी चाहिए। आवश्यकतानुसार 7 से 10 दिन के अन्तराल पर पानी देते रहना चाहिए। जल प्लावन की स्थिति इसके लिये ठीक नहीं है, अतः जल निकास की अच्छी व्यवस्था होनी चाहिए, इससे इसकी बढ़वार ठीक रहती है। केले में सिंचाई 7.5 सेमी. गहराई पर प्रति 8–10 दिन के अन्तराल पर तथा 12.5 सेमी. प्रति 15 दिन के अन्तराल पर देनी चाहिए।

वर्षा ऋतु के 2–3 माह में केले के आभासी तने (Pseudo stem) के पास मिट्टी चढ़ाने से पौधे गिरते नहीं हैं। फूल व फल आने पर लकड़ी का सहारा देना चाहिए इसे प्रोपिंग (propping) कहते हैं। पौधे के आधार से अनेक सकर्स निकलते हैं। इन्हें बने रहने दिया जाये तो वे पौधे की खुराक खींच लेते हैं जिससे पैदावार पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है तथा पेड़ी फसल (रेटूनिंग) लेने पर केवल 1–2 सकर्स ही बढ़ने दिया जाता है। अन्य सकर्स को हटाने हेतु 2–4 डी या पेट्रोल का प्रयोग किया जा सकता है। इस क्रियाकलाप को डिसकरिंग (Desuckering) कहते हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं –सारणी 10.6

सारणी 10.6 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र. स.	कीट–नाशीजीव /व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–बीटल (Stem Weevil: *Cosmopolites sordidus*)	कीट काले रंग के नये पत्तों एवं छोटे–छोटे फलों के कोमल छिलकों को खुरच कर खाते हैं, जिससे पत्तियों एवं फलों पर काली धारियाँ दिखाई पड़ती हैं। जुलाई से अक्टूबर में सक्रियता अधिक होती है।	मिथाइल डिमेटॉन 25 ईसी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के दर से छिड़काव करें।
2	तना छेदक (Stem Borer: *Odoiporus longicollis*)	लट तने में छेद करके अन्दर चले जाते हैं व प्रौढ़ काले रंग के मुँह लम्बा व सुई जैसा होता है, ये तने को खोखला कर देते हैं। इस कारण पौधा मर जाता है। वर्षा के दिनो में अधिक सक्रिय रहता है।	गम्भीर रूप से प्रभावित पौधों को खेत से हटाकर जला देवें। फोरेट 10 जी 5 ग्राम प्रति पौधा या कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 2 से 4 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
3	नाशीजीव– बेरोइंग सूत्रकृमि (*Radopholus similis*)	छोटे काले घाव जड़ों पर बना देते हैं जिसमें कई कवक भी आसानी से अन्दर प्रवेश करने से पौधे को दोहरा नुकसान होता है।	राइजोम हमेशा सूत्रकृमि मुक्त क्षेत्र से ही चयन करना चाहिए तथा इनका उपचार किसी दानेदार सूत्रकृमिनाशी (फोरेट) से कर उष्ण जल उपचार (55^0 सेंटीग्रेड पर 20 मिनट) कर छाया में सुखाकर रोपण करें। प्रति गड्ढा 50 ग्राम मिथाम सोडियम को बेजोमेट के साथ मिलाकर इसे 5–10 दिन ढकने के बाद पौधा लगायें।
4	व्याधि– गुच्छ शीर्षरोग (Bunchy top): विषाणु रोग प्रसारण बनाना एफिड (*Pentalonia nigronervosa*) द्वारा ।	पौधों की पत्तियाँ अपरिपक्व अवस्था में ही खुल जाती हैं और सिरे पर सघन पर्ण गुच्छ बनाती हैं, उन पर गहरे हरे रंग के धब्बे व धारियाँ स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं। देर से संक्रमित पौधो मे फलों के गुच्छे आकार में छोटे रह जाते हैं।	रोग रहित सकर्स का प्रयोग करें। बाग में रोगी पौधों का पता लगते ही उसे समूल उखाड़ कर नष्ट करे। कीटनाशी डाइमिथोएट 30 ई सी या मिथाइल डिमेटोन एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के घोल का छिड़काव करे।
5	पनामा रोग (फ्यूजेरियम म्लानी) (*Fusarium oxysporum* f.sp. *Qubense*)	पत्तियाँ पीली , डण्ठल टूट जाते हैं और नीचे की ओर लटकी पत्तियाँ सूख कर गिर जाती हैं। स्तम्भ लम्बाई में फट जाता है और पौधा चार से छः सप्ताह में सूख जाता है। रोगी पौधों की जड़ें काली होकर सड़ने लगती हैं। यह रोग रोगी पौधों से आस–पास के पौधों में फैलता जाता है।	पौधों को आसपास की मिट्टी सहित निकाल कर नष्ट कर देना चाहिये तथा रोगी पौधों के गड्ढे में चूना डालकर भूमि को पानी से 2 से 6 माह तक भरकर रखने से भूमि वापस केला उगाने के लिए उपयोगी बन सकती है। रोग ग्रस्त क्षेत्र में केले की कैवेन्डिश किस्म या पूवन रोगरोधी किस्में हैं।
6	पत्तीधब्बा रोग (सिगाटोका पर्ण धब्बा) कवक (*Mycosphaerella musicola*)	रोगग्रस्त पौधे की पत्तियाँ छोटी व भूरे रंग के धब्बे युक्त हो जाती हैं। फल छोटे आकार के कोणित ही रहते हैं। यह रोग वर्षा के मौसम में जब तापमान 23–25^0 सेंटीग्रेड हो तो तेजी से फैलता है।	रोकथाम हेतु जल निकास की समुचित व्यवस्था करें, उचित पादप अन्तराल रखें तथा संक्रमित भाग निकाल दें। रसायन में डाइथेन एम–45 जिनेब (डायथेन जेड़–78) 0.1 प्रतिशत की दर से नियमित अन्तराल पर छिड़काव लाभकारी रहता है।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

केले की परिपक्वता की जाँच उसकी 3/4 कोणिता (Angularity) से करते हैं। जब फल पूर्ण विकसित लगभग गोल, हल्के हरापन लिए हुए हो जाए तब इनकी तुड़ाई करनी चाहिए। फलन उम्र पौधे रोपण के समय लिए नए सकर्स, किस्म व स्थान पर निर्भर करती है जैसे पूवन, मोन्थन, रसथाली व ड्वार्फ कैवन्डिश किस्में पौध रोपण के 11–12 महीने में तैयार होती हैं। वहीं बसराई ड्वार्फ महाराष्ट्र क्षेत्र में 14 महीने लेती है। फूल आने से 5 माह बाद फल तैयार हो जाते हैं। सामान्यतः भारत में इसकी तुड़ाई अप्रैल से सितम्बर में की जाती है तथा उपज किस्मों के आधार पर 30 से 40 टन/हेक्टेयर होती हैं।

साधारणतया फलों को वायु रहित कमरे में रख देते हैं तथा एक कोने में धुआँ करने से 30 से 48 घंटे में फल पककर तैयार हो जाते हैं। आजकल रसायनों तथा हार्मोन से भी फलों को पकाया जाता है। इसमें हवा रहित कमरों में एक पात्र में 200 मि. ली. ईथरेल व 10–15 ग्राम सोडियम हाइड्रोक्साइड (NaOH) का घोल प्रति क्विंटल दर से रखकर छोड़ देते हैं। 48 घंटे में केले पक जाते हैं या ईथरल के 1000 पी.पी.एम. में डुबोकर फलों को रखने पर एक जैसे सुनहरे पीले रंग के फल दूसरे दिन तैयार हो जाते हैं। पके फलों को 12–13 डिग्री सेल्सियस तापक्रम व 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर एक सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है।

अमरूद (GUAVA)

वानस्पतिक नाम : Botanical name) :
सीडियम गुवाजावा एल.
***(Psidium guajava* L.)**

कुल (Family) : मिरटेसी *(Myrtaceae)*

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n=2x=22

खाये जाने वाला भाग (Edible part) : पुष्पासन व फल भित्ती

उत्पत्ति स्थल (Centre of origin) : मैक्सिको पेरू

फल का प्रकार (Fruit type) : सरस (Berry)

अमरूद के फलों में विटामिन 'सी' (300 मिग्रा/100 ग्राम गूदे) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसी पोषण मान के कारण इस फल को उष्ण कटिबंधीयों का सेव भी कहते है (Apple of the tropics) फल ताजे रूप में खाने के अलावा गुणवत्ता युक्त जैली बनाने में प्रयोग किये जाते हैं। हमारे देश में उत्तर प्रदेश का इलाहाबाद जिला अच्छी गुणवत्ता वाले अमरूद के लिए प्रसिद्ध है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

अमरूद उष्ण तथा उपोष्णीय क्षेत्र का फल है। इसकी फसल उत्पादन हेतु उपयुक्त तापमान 23–28° से. तथा गुणवत्ता युक्त फल शरदकाल में रात का तापमान 10° से. पर बना रहता है तब होता है। जिन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा 250 सेमी. से अधिक होने पर फलों की गुणवत्ता अच्छी नहीं होती। इसका पौधा सूखे की दशा में कम प्रभावित होता है लेकिन वह पाले में शीघ्र ही प्रभावित हो जाता है। यह विभिन्न प्रकार की मिट्टियों में उगाया जा सकता है। वैसे गहरी उपजाऊ बलुई दोमट मिट्टी अमरूद की खेती के लिये उपयुक्त रहती है। मृदा क्षारीयता का मान पी एच 7.6 से अधिकता होने पर उखटा रोग की सम्भावना को बढ़ा देता है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

भारत में उगाई जाने वाली किस्मों में इलाहाबाद सफेदा व लखनऊ–49 (सरदार) प्रमुख है।

इसके अतिरिक्त अर्का मृदुला, अर्का अमूल्या, अर्का किरण, अर्का रश्मि नवीन किस्में हैं जो राष्ट्रीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैगलूरू एवं ललित व श्वेता केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ से एवं पंत प्रभात किस्म गो.व.प. कृषि एवं प्रौ.वि.वि, पंतनगर, उत्तरांचल से तथा हिसार सफेदा व हिसार सूर्खा किस्में हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार से विकसित की गई हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

अमरूद का प्रवर्धन वानस्पतिक तरीके से ही किया जाना चाहिए। बीज से प्रसारित पौधे का प्रयोग मूलवृन्त के लिये किया जाता है जिस पर इनार्चिंग एवं वेंज ग्राफ्टिंग करते है। अमरूद के पौधों को स्टूलिंग एवं लेयरिंग द्वारा भी तैयार किया जाता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

पौधे लगाने का उचित समय जुलाई–अगस्त है लेकिन जहाँ सिंचाई की सुविधा हो वहाँ फरवरी के अन्त में भी पौधे लगाये जा सकते है। पौधे लगाने के लिये 60×60×60 सेन्टीमीटर आकार के गड्ढ़े, गर्मी के दिनों (मई, जून) में तैयार किये जाते हैं। इन गड्ढों में 25 किलो अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद, 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण तथा मिट्टी के मिश्रण से भरकर वर्षा ऋतु में पौधों को लगा दिया जाता है।

पौधे से पौधे की दूरी 6 से 7 मीटर रखनी चाहिये। सघन पौधा रोपण के लिए अमरूद के पौधे 3×6 मीटर पौधे से पौधे × कतार से कतार की दूरी पर भी लगाये जा सकते है। अति सघन बागवानी (मेडो आरचर्ड) हेतु पौधों को 2×1 मीटर की दूरी पर लगाया जाता है।

सारणी 10.7 : अमरूद में बहार नियंत्रण

बहार का नाम	फूल आने का समय	फलों की तुड़ाई
अम्बे बहार	फरवरी – मार्च	वर्षा (जुलाई–अगस्त)
मृग बहार	जुलाई–अगस्त	सर्दी (नवम्बर–दिसम्बर)
हस्त बहार	सितम्बर–अक्टूबर	बसंत (मार्च–अप्रैल)

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

प्रति पौध खाद एवं उर्वरक निम्न दर्शायी गयी तालिका 10.8 के अनुसार डालें:–

वर्षा ऋतु वाली फसल के लिये देशी खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा दिसम्बर माह में तथा बची हुई यूरिया की आधी मात्रा मार्च अप्रैल में देनी चाहिये। इसी प्रकार शरद ऋतु की फसल के लिये देशी खाद, सुपर फॉस्फेट, पोटाश व यूरिया की आधी मात्रा जून तथा शेष यूरिया की मात्रा सितम्बर माह में दे देनी चाहिये। सर्दी की फसल लेना अधिक लाभप्रद है क्योंकि फल अच्छे गुणवत्ता वाले व कीट/व्याधि से मुक्त होते हैं। सूक्ष्म तत्वों में जिंक व बोरोन की कमी से पत्तियों का आकार छोटा रहता है। पौधे की वृद्धि रूक जाती है तथा फल फटने जैसी समस्या आ जाती है। इसके नियंत्रण हेतु 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट व 0.3 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव अगस्त व अक्टूबर माह में करना चाहिए।

सारणी 10.8 : खाद एवं उर्वरक

वृक्ष की आयु वर्ष में	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1–3	10–20	0.05–0.25	0.15–1.50	0.20–0.40
4–6	25–40	0.30–0.60	0.50–2.00	0.40–0.80
7–10	40–50	0.75–1.00	2.00	0.80–1.20
10 से अधिक	50	1.00	2.50	1.20

संधाई व कृन्तन (Training & pruning) :

अमरूद को आरम्भिक वर्षों में साधने हेतु परिवर्तित केन्द्रीय प्ररोह विधि (modified central leader system) काम में लेते हैं। इस विधि में पौधों को 75 सेमी. तक सीधे बढ़ने देते हैं तथा फिर इस ऊँचाई से काट देते हैं जिससे पार्श्व शाखाएँ निकलती हैं। 20–25 सेमी. के अंतर पर 3–4 शाखाएँ चुन ली जाती हैं। अब प्रत्येक 2–3 साल में शीर्ष व किनारे की शाखाओं की छँटाई कर देने से आकार नियंत्रित रहता है। अमरूद में फूल तथा फल, नई वृद्धि शाखाओं पर ही लगते है अतः कृन्तन नियमित प्रति वर्ष अपनाना चाहिये। जिससे नयी वृद्धि अधिक मात्रा में हो। इसके लिए समय अप्रैल माह तथा सघन बागवानी में आवश्यकतानुसार (साधारणतया सितम्बर व फरवरी माह) करें।

बहार नियंत्रण (Crop regulation) :

अमरूद के पौधे पर वर्ष में तीन बार फूल आते हैं। मृग बहार से मिलने वाले फलों की गुणवत्ता अच्छी होती है। इस समय बरसात होने से सिंचाई की कम आवश्यकता होती है। शेष ऋतुओं की बहार को नष्ट कर देना चाहिये। फलतः रोकने के लिये फूलों को हाथ से तोड़ देना चाहिये अथवा फूल आने से 1–1.5 माह पहले पानी नहीं देना चाहिये एवं बाग की गुड़ाई कर देनी चाहिये। एन.ए.ए. के 100 पी.पी.एम. (100 मिग्रा/लीटर) उर्वरक ग्रेड यूरिया का 10 से 15 प्रतिशत सान्द्रता (100 से 150 ग्राम प्रति लीटर) का छिड़काव 15 अप्रैल से 15 मई (50 प्रतिशत पुष्पन अवस्था) में करना चाहिये। इससे बहार नियंत्रण में मदद मिलती है। सारणी 10.7

सिंचाई एवं अन्तराशष्यन (Irrigation & interculture) :

गर्मियों में प्रायः 7 से 10 दिन एवं सर्दियों में 15 से 20 दिन के अंतर से सिंचाई करनी चाहिए। वर्षा ऋतु की फसल लेने के लिये सिंचाई फरवरी मार्च में शुरू करनी चाहिये तथा शरद ऋतु की फसल के लिये सिंचाई जून माह में प्रारम्भ कर देनी चाहिये। फल विकास के समय उचित नमी होना आवश्यक होता है। आरम्भ के तीन वर्षों तक आय का साधन बना रहे इसके लिए मटर, ग्वार, चौला, मिर्च, बैंगन आदि फसलों की खेती की जा सकती है।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.9

जस्ते की कमी : अमरूद की फसल, जस्ते की कमी से सामान्यतः प्रभावित होती देखी गयी है। इससे पत्तियाँ अत्यधिक छोटी व चर्मिल हो जाती हैं और उनकी शिराओं के बीच का भाग पीला पड़ ताम्र वर्ण हो जाता है। ग्रसित पेड़ों की बढ़वार रूक जाती है और ऊपर से नीचे की ओर शनैः शनैः मरने लगते है। फल सख्त होकर सूख कर गिर जाते हैं। नियन्त्रण हेतु जिंक

सारणी 10.9 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट– फल मक्खी (*Bactrocera correcta*- Bezzi)	मक्खी बरसात के फलों को विशेष हानि पहुँचाती है। यह फलों के अन्दर अण्डे देती है। जिससे बाद में लटे (मैगट्स) पैदा होकर फल के अन्दर के गूदे को खाने लग जाती हैं।	प्रभावित फलों को इकट्ठा करके भूमि में गहरा गाड़ देवें अथवा नष्ट कर देवें। फेरोमोन ट्रेप लगानी चाहिए। स्पाइनोसेड 45 एस.सी. का 0.5 मिली. प्रति 1 लीटर पानी में प्रयोग करना चाहिए।
2	छाल भक्षक कीट	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
3	व्याधि– म्लानि रोग (मुरझान, उखटा, सूखा या विल्ट) कवक (*Fusarium oxysporum* var.*psidi*, *Gliocladium roseum macrophomina sp.*) आदि	आंशिक मुरझान, जिसमें पेड़ की एक या अधिक मुख्य शाखाएँ रोग ग्रस्त होती हैं । इन शाखाओं पर कच्चे फल छोटे भूरे व सख्त हो जाते हैं। बाद की अवस्था में रोग का प्रकोप पूरे पेड़ पर होता है और वह शीघ्र सूख जाता हैं। रोग अगस्त से अक्टूबर माह में उग्र रूप धारण कर लेता है।	बाविस्टीन एक ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से घोल कर 20 से 30 लीटर घोल प्रति वृक्ष से भूमि का मंजन (ड्रेन्च)। रोगी पेड़ों को जड़ सहित उखाड़ कर जला देना चाहिये व उस स्थान की मिट्टी को बाविस्टीन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर से दूसरा पौधा लगाने से पूर्व उपचारित करना चाहिये। प्रतिरोधी मूलवृन्त चाइनीज अमरूद (सीडियम–फ्रीड्रिक्स्थेलियेनम) का उपयोग तथा जैविक नियंत्रण उपाय में एस्पर्जिलस नाइजर(पूसा मृदा / काली सेना) व टाइकोडर्मा से करें ।
4	श्याम व्रण (एन्थ्रेक्नोज)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	

सल्फेट 6 ग्राम व बुझा हुआ चूना 4 ग्राम को एक लीटर पानी में घोल कर अप्रैल व जून माह में छिड़काव करने से अच्छा लाभ होता है।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

फलों का रंग जब हरे से पीले में बदलने लगे तब उन्हें सावधानी पूर्वक तोड़ लेना चाहिये। एक पूर्ण विकसित पेड़ से लगभग 40 से 50 किलोग्राम फल प्राप्त हो जाते हैं। अति सघन बागवानी (मेडो आरचर्ड) में दो वर्ष बाद लगभग 8–10 कि.ग्रा. फल प्रति पौध प्राप्त हो जाता है। तुड़ाई के बाद 9–10 डिग्री सेल्सियस तापमान पर लगभग 2–3 सप्ताह तक भण्डारित किया जा सकता है व कमरे के तापमान पर अधपके फलों को 5–6 दिन तक रखा जा सकता है।

पपीता (PAPAYA)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : केरिका पपाया एल (*Carica papaya* L.)

कुल (Family) : केरिकेसी (Caricaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 18

खाये जाने वाला भाग (Edible part) : मध्य फल मित्ती (Mesocarp)

उद्गम स्थल (Centre of origin) : **उष्ण कटिबंधीय अमेरिका (मेक्सिको)**

फल प्रकार (Fruit Type) **: सरस (Berry)**

पपीता जल्दी बढ़ने वाला एक फलदार पौधा है। इसके पौधे एक ही वर्ष में फल देने लगते हैं। यह विटामिन–'ए' (2500 आई यू) तथा 'सी' (85 मिग्रा प्रति 100 ग्राम गूदे में) का अच्छा स्रोत है। पपीते के फलों से जैम, कैण्डी, सिरप आदि बनाये जाते हैं। पपीते के हरे फल अपरिपक्व फलों के लेटेक्स से पपेन बनाया जाता है। पपीते के फलों का पीला रंग वर्णक केरिकाजेन्थिन व लाल गूदे वाली किस्म में लाइकोपिन नामक रंजक पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

यह उष्ण जलवायु का पौधा है जो खुले धूप वाले क्षेत्र में पानी की सुविधा के साथ उगाया जा सकता है। इसके लिये पाला हानिकारक होता है। खेती हेतु औसत तापमान 22–26 डिग्री सेल्सियस उपयुक्त रहता है। रात का औसत तापमान 12–14 डिग्री सेल्सियस से कम होने पर पौध वृद्धि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जल निकास युक्त दोमट मिट्टी पपीते की खेती के लिये उत्तम रहती है। भूमि की गहराई 45 सेमी. होनी आवश्यक है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

1. फल उत्पादन हेतु : हनीड्यू (मधु बिन्दु), कुर्ग हनीड्यू, वाशिंगटन, कोयम्बटूर–1, को.–3, को.–4, को.–6, पंजाब स्वीट, पूसा डेलिसियस, पूसा जाइन्ट, पूसा ड्वार्फ, पूसा नन्हा, सूर्या, पंत पपीता आदि। ताइवान फल उत्पादक किस्में : नोन यू नंबर–1, रेड लेडी, सनराईज, ताइवान–786

2. पपेन उत्पादक किस्में : पूसा मैजेस्टी, को.–5, को.–2

3. उभय लिंगी किस्में : पूसा डेलिसियस, पूसा मैजेस्टी, सूर्या, सनराइज सोलो, ताइवान, सीओ–3, सी ओ–7, रेड लेडी, कुर्ग हनीड्यू आदि।

4. गृह वाटिका / गमलों में लगाने हेतु : पूसा नन्हा

5. पारम्परिक किस्में : बरवानी लाल, वाशिंगटन, रांची आदि।

नवीन किस्मों में अर्का सूर्या व अर्का प्रभात जैसी संकर किस्में, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, बैंगलूरू से विकसित की गई हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

पपीते के प्रवर्धन की अच्छी विधि बीज द्वारा है। एक हेक्टेयर क्षेत्र की पौध तैयार करने के लिये लगभग 250–300 ग्राम बीज पर्याप्त होता है। आज–कल ऐसी किस्में विकसित हुई हैं जिनमें केवल मादा या उभयलिंगी पौधे ही होते हैं जिन्हें गाइनों–डाइसियस (gynodioecious) कहते हैं। इन किस्मों को एक गड्ढे में एक ही पौधा लगाएँ। इस प्रकार इनकी प्रति हेक्टेयर बीज दर (150 ग्राम) भी कम हो जायेगी।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

गर्मी के दिनों में खेत की मिट्टी पलटने वाले हल से जुताई करके धूप में खुला छोड़ देना चाहिये। इसके पश्चात् देशी हल व पाटा चलाकर भूमि को समतल एवं भुरभुरी बना लीजिए फिर जून के अन्तिम सप्ताह में 45×45×45 सेंटीमीटर आकार के गड्ढे 2×2 मीटर की दूरी पर खोदें। प्रत्येक गड्ढे में 200 ग्राम सुपर फॉस्फेट, 10 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद व 50 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिलाकर भर देना चाहिये। जिन किसानों के पास सिंचाई की समुचित व्यवस्था हो तो फरवरी–मार्च में भी पौध रोपण कर सकते हैं।

तैयार किये गये पौधों को जुलाई–अगस्त माह में बनाये गये गड्ढों में लगा देना चाहिये। प्रत्येक गड्ढे में दो पौधे लगाये। पौधे में फूल आने लगे उस समय मादा पौधे को खेत में रहने देना चाहिये। तथा 10 प्रतिशत नर पौधे जो खेत में ठीक तरह से फैले हो, को छोड़कर शेष नर पौधे को हटा देना चाहिए। गाइनो डायोसियस किस्में जिनमें मादा व उभयलिंगी फूल आते है। एक स्थान पर एक ही पौधा लगावें।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

लगभग 12 से 15 माह में पपीते के पौधों में फल आने लगते है। प्रति वर्ष 25 से 30 किलो गोबर की खाद, 100 ग्राम यूरिया, 400 ग्राम सुपर फॉस्फेट व 150 ग्राम म्यूरेट ऑफ पोटाश प्रति पौधे के हिसाब से देना चाहिये। यूरिया की 25 ग्राम मात्रा पौध लगाने के दो माह बाद, 35 ग्राम पौध लगाने के चार माह बाद तथा 50 ग्राम फूल आने से पूर्व देवें। सुपर फॉस्फेट की 200 ग्राम मात्रा गड्ढा भरते समय तथा 200 ग्राम मात्रा पौध रोपण के 5 से 6 माह बाद (दिसम्बर–जनवरी) देवें। पोटाश 75 ग्राम मात्रा दिसम्बर–जनवरी में देवें। देशी खाद की मात्रा जून–जुलाई में देनी चाहिये। सूक्ष्म तत्व जिंक सल्फेट 0.5 प्रतिशत व बोरान 0.2 प्रतिशत के साथ 0.4 प्रतिशत चूना मिलाकर पर्णीय छिड़काव रोपण के 8 माह पर करने से अच्छे परिणाम मिलते हैं।

सिंचाई एवं अन्तःशस्यन (Irriagation & inter culture)

पपीते की जड़े भूमि में गहरी नहीं जाती हैं अतः थोड़े–थोड़े समय के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिये लेकिन इस बात का विशेष ध्यान देते रहें कि पेड़ के तने के पास पानी भरा नहीं रहे वरना जड़ और तने के सड़ने की सम्भावना रहती है। गर्मियों में लगभग एक सप्ताह के अन्तर से तथा जाड़े में 10 से 15 दिन के अन्तर से सिंचाई करनी चाहिये। खेत में जल निकास की समुचित व्यवस्था रखनी चाहिये तथा तने के चारों तरफ थोड़ी मिट्टी चढ़ा देनी चाहिये ताकि पानी तने के सीधे सम्पर्क में नहीं आये। बूँद–बूँद सिंचाई पद्धति अपनाने से फल उपज व गुणवत्ता में सुधार होता है। अन्तः फसलें लेते समय ध्यान रखें साथ में सोलेनेसी (टमाटर, मिर्च आदि) व कद्दूवर्गीय सब्जियाँ न लें।

लिंग–भेद (Sex identification) : पौध रोपण के लगभग 50 दिन बाद पुष्पन आरम्भ होता है। पपीते में तीन तरह के पुष्प होते हैं नर, मादा और उभयलिंगी।

- **मादा फूल :–** ये पत्तियों के कक्ष से छोटे डण्ठलों पर

निकलते हैं। इनकी लम्बाई एक से तीन इंच तक होती है। इनका आकार बड़ा तथा नीचे से चकरीनुमा होता है। इनमें पुंकेसर नहीं होता और डिंब ग्रन्थि स्पष्ट दिखाई देती है। यह ग्रन्थि बाद में विकसित होकर अण्डाकार या गोल हो जाती है और पपीते के फल के रूप में आती है।

- **नर फूल :–** लम्बी टहनियों पर पुष्प गुच्छे लटके हुए होते हैं। फूल छोटे और पूर्ण रूप से विकसित होते हैं। ये फूल पत्तियों के कक्ष से अकेले या गुच्छे में छोटे डण्ठलों पर लगते हैं। इन फूलों में फल नहीं बनते। यह फूल मादा फूल से पतले तथा छोटी–छोटी नलिकाओं की तरह होते हैं।
- **उभयलिंगी फूल :–** उभयलिंगी पेड़ पर मध्यम आकार के नर और मादा के बीच के फूल होते हैं। यह पुष्प गुच्छों में निकलते हैं इनमें नर व मादा दोनों प्रकार के भाग एक ही फूल में होते हैं। अर्थात इनमें डिंब ग्रन्थि भी होती है और पुंकेसर भी। इस तरह के पेड़ों में लम्बे आकार के खीरा की शक्ल के फल लगते हैं। इन तीनों प्रकार के फूलों में मादा व नर फूल तो स्थिर संख्या में रहते हैं परन्तु उभयलिंगी फूलों का लिंग वातावरण में भिन्नता के अनुसार बदलता है।

पपेन निकालना (Papain extraction)

हरे एवं कच्चे पपीते के फलों से सफेद रस या दूध निकालकर सुखाये गये पदार्थ को पपेन कहते हैं। इसका प्रयोग प्रोटीन को पचाने, एल्कोहल, दवा एवं चिवंगम निर्माण में किया जाता है। पपेन एक महंगा उत्पाद होने के कारण इसका उत्पादन करके अधिक लाभ लिया जा सकता है। अधिकतम पपेन प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि पपेन सूर्य निकलने से पूर्व ही निकाल लेना चाहिए। साधारणतः प्रातः 6–9 बजे के बीच पपेन निकालना सर्वोत्तम है।

पपेन प्राप्त करने के लिए तीन–चौथाई विकसित (3 महीने पुराने) फलों पर डण्ठल की ओर से करीब 3 मि.मी. गहराई के 4–5 चीरे लम्बाई के हिसाब से लगाते हैं। प्रतिदिन ऐसी चार कट प्रति फल लगाये जाते हैं। चीरा लगाने के तत्काल बाद फलों से दूध निकलने लगता है, जिसे किसी मिट्टी या एल्यूमिनियम के बर्तन में इकट्ठा कर लिया जाता है। इस प्रकार फल की पूरी अवधि में 12 से 15 बार चीरा लगाकर दूध निकाला जा सकता है। चीरा लगाये गये फलों को पकने दिया जाता है जिनका स्वाद सामान्य फलों के समान होता है। परन्तु रंग खराब हो जाने के कारण बाजार माँग में कमी आ जाती है। अतः इन फलों का उपयोग जैम, मुरब्बा, टूटी–फ्रूटी एवं फल शेक के रूप में करना अच्छा रहता है। इकट्ठा किये गये दूध को चौड़े आकार के मिट्टी के पात्र में डालकर धूप में अथवा 50–60 डिग्री सेल्सियस तापमान पर सुखाया जाता है। तरल दूध में थोड़ा–सा (350 पी.पी.एम.) पोटेशियम मेटाबाई सल्फाईट मिला दिया जाता है। इससे पपेन लम्बे समय तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

बीजोत्पादन (Seed production)

पपीते का बीज उत्पादन भी एक अत्यधिक लाभकारी व्यवसाय है। पपीते में पर–परागण के कारण शुद्ध किस्म के बीज उत्पादन करना एक जटिल प्रक्रिया है। फिर भी अत्यधिक सावधानी एवं नियंत्रित परागकण द्वारा काफी हद तक सन्तोषजनक किस्म की शुद्धता रखते हुए बीज उत्पादन किया जा सकता है। बीजोत्पादन में जब मादा फूलों का परागण उभयलिंगी फूलों से किया जाता है तो मादा और उभयलिंगी संतानें समान संख्या में पैदा होती हैं। इस प्रकार के परागण किस्म निम्नता (Inbreeding depression) सबसे कम होती है तथा इस तरह की सहोदर संगम (Sib mating) से ओजपूर्ण संतति प्राप्त होती है।

चुने हुए पौधों में परागण के बाद विकसित मादा फलों में से अच्छी किस्म के गुणों के अनुसार आकार एवं भार वाले फलों को पूर्ण रूप से पकने के बाद तोड़ना चाहिए। चयनित फलों को काटकर बीज प्राप्त कर लेते हैं। बीजों को राख में रगड़कर साफ कर लेना चाहिए तथा छायादार स्थान पर सुखाना चाहिए। पूर्णरूप से सूखे, स्वस्थ, साफ, पके बीजों को कवकनाशी दवा से उपचारित करके बीजों को शुष्क हवादार एवं ठण्डे स्थानों पर एक वर्ष तक भण्डारित रखा जा सकता है।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.10

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

जब फल हल्का या पीलापन लेने लगे और उसमें सफेद दूध आना बन्द हो जाये तो समझना चाहिये कि फल पक गया है अतः इनकी तुड़ाई कर लेनी चाहिये। फलों को पक्षियों से बचाने के लिये इनके चारों ओर पुराना टाट बाँधा जा सकता है। पपीते से प्रति पौधा 40 से 50 किलोग्राम उपज प्राप्त होती है। प्रति पौधा औसतन 200 ग्राम पपेन प्राप्त किया जा सकता है। परिपक्व फलों को 13–14 डिग्री सेल्सियस तापक्रम पर 1–2 सप्ताह के लिए भण्डारित किया जा सकता है।

सारणी 10.10 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट–नाशीजीव /व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–माहू (*Mysus persicae*) एवं सफेद मक्खी (*Bemisia tabaci*)	ये कीट पत्तियों से रस चूस कर नुकसान पहुँचाते हैं। माहू मोजेक या रिंग स्पोट वायरस तथा सफेद मक्खी पर्ण कुंचन विषाणु को फैलाती हैं।	मिथाईल डेमेटोन 25 ई सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर या डाइमिथोएट 30 ई सी एक मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें।
2	नाशीजीव– मूल ग्रन्थि (सूत्रकृमि) मिलाइडोगाइनी	पौधा कमजोर और पीला पड़ जाता है और फल भी छोटे व कम लगते हैं।	पौध तैयार करते समय मिथाम सोडियम व बेंजोमेट का मिश्रण 50 ग्राम प्रति एक वर्ग मीटर क्षेत्र के हिसाब से मृदा में मिलाकर इसे 5–10 दिन तक ढककर बाद में पौध लगावे तथा खेत में ट्राइाकेडर्मा से उपचारित गोबर की खाद तथा कार्बोसल्फान 25 ईसी दवा से मृदा का मंजन (ड्रेंच) कर दें।
3	व्याधि–क्लेद–गलन रोग (डेम्पिंग ऑफ) व स्तम्भ मूल संधि विगलन (कॉलर रॉट) कवक *(Pythium aphanidermatum)*	पौधशाला का रोग है जिसमें छोटे–छोटे पौधे नीचे से गलकर मर जाते हैं जिसे डेम्पिंग ऑफ कहा जाता है वहीं कॉलर रॉट में भूमि के पास से तने की ऊपरी छाल गलने लगती है तथा पौधा सूख जाता है।	बाग में पानी का निकास अच्छा होना चाहिये। रोग दिखाई देते ही रोगग्रस्त भाग को पूरी तरह हटाकर कॉपरआक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत का लेप या छिड़काव कर देवें। बोर्डो मिश्रण (5:5:50) तने के आधार के चारों ओर भूमि में डालने व तने पर छिड़काव करने से रोग का प्रसार घट जाता है। नर्सरी में पौध को रोग से बचाने के लिये मिट्टी को 3 ग्राम ताम्रयुक्त कवकनाशी प्रति लीटर पानी की दर के घोल से तर कर देवें और बीजों को थाइरम 3 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज की दर से उपचारित कर बोयें।
4	तना या पद विगलन रोग (स्टेम या फुट रॉट) कवक (*Phytophthora palmivora*)	पेड़ों की छाल फट जाती है व शहद के छत्तेनुमा दिखाई देती है। ऐसे पेड़ गिर जाते हैं।	
5	पर्णकुंचन (लीफ कर्ल) व मोजेक (रिंग स्पोट)	पर्णकुंचन रोग से पत्तियाँ आकार में छोटी, कुंचित, विकृत व सिकुड़न लिये मोटी शिराओं वाली उल्टे प्याले के रूप में नीचे की तरफ एवं भीतर की ओर मुड़ जाती हैं। मोजेक रोग से नई पत्तियों पर चितकबरापन व सिकुड़न सबसे पहले दिखाई पड़ता है। फल छोटे विकृत वाले होते हैं।	कीटनाशी डाइमिथोएट 30 ईसी 1 मिलीलीटर/लीटर या इमिडाक्लोरप्रिड 1 मिलीलीटर प्रति 3 लीटर पानी के हिसाब से घोलकर 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करें। इन दवाओं का प्रयोग फल लगने से पहले ही करना चाहिये। फल लगने के बाद स्पनाइनोसाइड आधा मिली प्रति लीटर की दर से छिड़कना चाहिए। पपीते के बाग के आसपास कद्दू, लौकी, ककड़ी, बैंगन, मिर्च, टमाटर व आलू नहीं उगायें।

बेर (BER)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
जिजिफस मोरीसियाना लेम्क.
(*Ziziphus mauritiana* Lamk.)

कुल (Family) : रैहमनेसी (Rhamnaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 4x = 48

खाये जाने वाला भाग (Edible part) : बाह्य व मध्य फल भित्ती (Peri-Mesocarp)

उद्गम स्थल (Centre of origin):
इण्डो–चाइना (Indo-china)

फल प्रकार (Fruit type) : अष्ठिल (Drupe)

बेर के फलों का प्रयोग ताजे फलों के रूप में सुखाकर छुआरों के रूप में, शर्बत, जैम, मुरब्बा, केण्डी, चटनी एवं अचार बनाकर किया जाता है। बेर के फल विटामिन सी (150 मिग्रा. प्रति 100 ग्राम), ए व बी कॉम्पलेक्स से भरपूर होते हैं इस पोषण मान के कारण इसे गरीबों का सेब (poor men's apple) कहते हैं। इसके अतिरिक्त बेर के पौधे का लाख के कीड़ों को पालने में और इसके पत्तों का प्रयोग पशुओं के चारे के रूप में किया जाता है। बेर की पत्तियों में 5.6 प्रतिशत पाच्य प्रोटीन और 49.7 प्रतिशत कुल पाच्य पोषक तत्व पाया जाता है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

बेर शुष्क एवं अर्ध शुष्क जलवायु की अलग–अलग दशाओं में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। मूसला जड़ होने के कारण अन्य फलों की तुलना में इसको बहुत ही कम पानी की आवश्यकता होती है। जलवायु भिन्नता के कारण उत्तरी भारत में ग्रीष्म ऋतु (मई–जून) में बेर के पत्ते झड़ जाते हैं और पौधे सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं जबकि दक्षिण भारत में सम जलवायु होने के कारण पूरे वर्ष भर पौध वृद्धि होती रहती है। इसकी खेती क्षारीय तथा लवणीय भूमि में भी कर सकते है किन्तु बलुई दोमट भूमि जिसमें जीवांश की मात्रा अधिक हो इसकी खेती के लिये उपयुक्त रहती है। बेर मृदा की उच्च लवणता (21 ई.एस.पी.) को भी सहन करने में सक्षम है।

उन्नत किस्में (Improved varieties) सारणी 10.11 देखें।

प्रवर्धन (Propagation) -

बेर का प्रवर्धन कलिकायन द्वारा किया जाता है। उमरान व गोला किस्म के लिए देशी बोरड़ी (जीजीफस रोटेन्डीफोलिया) मूलवृन्त अति उपयोगी पाया गया है। स्वस्थानिक (इन सूटू) विधि में मूलवृन्त सीधे बाग में रेखांकन के अनुसार लगाये जाते हैं जिन पर अगले वर्ष पैबंद चढ़ाते हैं।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

मई जून माह में 1×1×1 मीटर आकर के गड्डे 6 से 8 मीटर की दूरी पर खोद लेते हैं फिर इन गड्ढों को खुला छोड़ देते है बाद में इनमें सारणी 10.12 के अनुसार खाद व उर्वरक प्रति गड्ढा देते हैं।

खाद उर्वरक एवं दवा को खोदी हुई मिट्टी के साथ अच्छी तरह मिला देते है और फिर इस मिट्टी को गड्ढें में भर देते है। कलिकायित पौधों को थावलों के बीच लगाने के बाद सिंचाई कर देते हैं। इसकी रोपाई का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु है।

सारणी 10.11 : बेर की उन्नत किस्में एवं पकने का समय

फसल	उन्नत किस्में	फल पकने का समय
अगेती	गोला, थार सेविका व थार भुवराज	जनवरी का प्रथम सप्ताह
मध्यम	सेब, मूण्डिया, जोगिया, कैथली व चौमूलोकल	जनवरी का अन्तिम सप्ताह
पछेती	उमरान	फरवरी अन्तिम सप्ताह से मार्च प्रथम सप्ताह

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

प्रति पौधा खाद एवं उर्वरक निम्न दर्शायी गयी तालिका 10.13 के अनुसार डालें:–

यूरिया की आधी मात्रा और सुपर फॉस्फेट एवं म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा जुलाई एवं बाकी बची हुई यूरिया की आधी मात्रा नवम्बर माह में देनी चाहिये। खाद व उर्वरक देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिये।

सारणी 10.12 : खाद, उर्वरक एवं रसायन

अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद	20 से 25 किग्रा
सुपर फॉस्फेट	1 से 1.5 किग्रा.
क्यूनालफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण	50 से 100 ग्राम

सारणी 10.13 : खाद एवं उर्वरक

पेड़ों की आयु वर्ष में	मात्रा किलोग्राम प्रति पेड़			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	10	0.22	0.35	0.08
2	20	0.44	0.70	0.16
3	20	1.10	1.40	0.20
4	25	1.20	1.75	0.25
5 वर्ष और उसके बाद	30	1.20	1.75	0.25

सिंचाई एवं अन्तराशस्य (Irrigation & interculture)

बेर के पौधों में कम पानी की आवश्यकता होती है। साधारण तौर पर फूल आने से पूर्व फल बनने की अवस्था पर 15 से 20 दिन अन्तराल पर 2–3 बार सिंचाई करना लाभप्रद होता है। मार्च–अप्रैल में पौधों को पानी देना फल परिपक्वता में देरी करता है। आरम्भ के तीन वर्षों तक बाग मे कूष्माण्ड कुल की सब्जियाँ के अतिरिक्त सभी प्रकार की सब्जियाँ जैसे मटर, ग्वार, चौला, मिर्च, बैंगन आदि ली जा सकती है। खरपतवार नियंत्रण हेतु डाईयूरोन (अंकुरण से पहले) तथा ग्लाईफोसेट (अंकुरण के बाद) 2 किलो प्रति हैक्टेयर के हिसाब से दे सकते हैं।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning)

प्रारम्भिक दो या तीन साल तक पौधे को सशक्त रूप और उचित आकार देने के लिये पौधे के मुख्य तने पर 4 से 5 प्राथमिक शाखाएँ हर दिशा में रहने देते हैं। पहली शाखा को जमीन की सतह से 30 सेमी. ऊपर रखते हैं। इसके बाद प्रत्येक शाखा के बीच में करीब 15 से 30 सेमी. की दूरी रखते हैं। बेर में प्रति वर्ष कृन्तन करना चाहिये क्योंकि इसकी पत्तियों के कक्ष से जो नये प्ररोह निकलते हैं उन्ही पर फूल एवं फल लगते हैं। मई में गर्मी प्रारम्भ होने पर पौधे सुसुप्तावस्था में प्रवेश कर जाते हैं तब इनकी कटाई–छँटाई (15 अप्रैल से 15 मई) कर देनी चाहिये जिससे ज्यादा नये प्ररोह निकलें और उन पर अधिक फल लगें। कृन्तन करते समय अनचाही रोगग्रस्त सूखी टहनियों और आपस में रगड़ खाती हुई टहनियों को हटा देना चाहिये। बेर में 6–द्वितीयक शाखाएँ (सेकेण्ड्रीज) स्तर तक या गत वर्ष की 25 प्रतिशत शाखाओं को हर वर्ष काटें।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.14

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

बेर के फल फूल आने के 150–175 दिन के बाद परिपक्व

सारणी 10.14 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–फल मक्खी (*Carpomya vesuviana*)	जब फल छोटे व हरे रहते है तब इस कीट का आक्रमण शुरू होता है। छोटे फल इसके प्रभाव में काणें हो जाते हैं लेकिन बड़े फलों के आकार में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता है।	समन्वित कीट नियंत्रण विधि में बेर के थावलों में मिट्टी खोदकर उनमें प्रति थावला 50 से 100 ग्राम क्यूनालफॉस 1 .5 प्रतिशत चूर्ण मिलावें साथ ही जब बेर मटर के दाने जैसा हो जाये तो तीन छिड़काव क्यूनालफॉस (25 ई सी) 2 मिलीलीटर या स्पाइनासेड (45एस.सी.)0.5 मिली. प्रति लीटर दवाई का घोल बनाकर 15–15 दिन के अन्तराल पर करने से बेर के बगीचों में पूर्ण कीट नियंत्रण किया जा सकता है।
2	चैफर बीटल (*Adoretus* sp.)	प्रकोप जून–जुलाई में अधिक होता है। यह पेड़ों की नई पत्तियों एवं प्ररोहों को खाता है।	
3	व्याधि– छाछ्या रोग (*Oidium erysiphoides F.sp. Ziziphi*)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
4	ऑल्टरनेरिया फल सड़न (*Alternaria sp.*)	फलों में फलवृन्त के निकट गहरे भूरे रंग के धब्बे दिखाई देते हैं। रोग ग्रसित फल शीघ्र ही टूट कर गिर जाते हैं।	इसके नियंत्रण के लिए जिनेव या डायथेन एम–45 नामक कवकनाशी के 0.2 प्रतिशत घोल का छिड़काव लक्षण दिखाई देते ही करना चाहिए।

होते हैं। यद्यपि फलों की परिपक्वता उस क्षेत्र की जलवायु एवं किस्मों पर निर्भर करती है फिर भी फलों के रंग बदलने की अवस्था पर (तुड़ाई के एक सप्ताह पहले) 750 पी.पी.एम. इथेफोन के छिड़काव से उसमें अग्रिम परिपक्वता लायी जा सकती है। पके हुए फलों की तुड़ाई कई बार में की जाती है। सामान्यतः फलों की तुड़ाई प्रातःकाल में करनी चाहिए।

बेर के एक पूर्ण विकसित पौधे से 40–200 किलोग्राम फल उपज प्राप्त होती है। वर्षा पर आधारित बाग के पाँच वर्ष के पेड़ से औसतन 40–50 किलोग्राम फल उपज प्राप्त होती है जबकि सिंचित बाग से प्रति पेड़ औसत फल उपज असिंचित पौधों की तुलना में 3–4 गुना (100–200 कि.ग्रा. प्रति वृक्ष) अधिक होती है। बेर के पौधों में तीसरे वर्ष फलन प्रारम्भ हो पाता है परन्तु व्यवसायिक फल उपज पाँचवें वर्ष से आरम्भ हो जाती है। बेर के फलों को साधारण भण्डार में 4–5 दिन तक रखा जा सकता है परन्तु प्रीकूलिंग (10 डिग्री से.) कर फलों को 0–3 डिग्री सेल्सियस तापक्रम एवं 85–90 प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता पर फलों को लम्बे समय तक ताजा रखा जा सकता है।

अंगूर (GRAPES)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
विटिस विनिफेरा मिचस.
(*Vitis vinifera* Michse.)
कुल (Family) : विटेसी (Vitaceae)
गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 40
उद्गम स्थल (Centre of origin) :
आर्मेनिया (एशिया माइनर के पास)
फल प्रकार (Fruit type) : सरस (Berry)
खाये जाने वाला भाग (Edible part) : फल भित्ती व प्लेसेन्टा (Pericarp & Placentae)

अंगूर एक बहुत ही स्वादिष्ट एवं पौष्टिक फल है। इसमें ग्लूकोज (8–13%) व फ्रूक्टोज (7–21%) नामक शर्करा, खनिज लवण एवं विटामिन 'बी' प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। इसकी खेती शराब बनाने, ताजा फल खाने तथा सुखाकर किशमिश और मुनक्का बनाने के लिये की जाती है। अंगूर की उत्पादकता में भारतवर्ष का विश्व में प्रथम स्थान है। भारतवर्ष में उगायी जाने वाली अधिकतर जातियाँ ताजा फलों के रूप में प्रयोग में ली जाती हैं।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

अंगूर की सफल खेती के लिये गर्मियों में अधिक गर्मी, सर्दियों में अधिक सर्दी लेकिन पाला रहित तथा पकने के समय वर्षा रहित मौसम उपयुक्त रहता है। पुष्पन के समय वर्षा होने पर फल कम बनते हैं। फलों के पकते समय वर्षा हो जाने से फलों की गुणवत्ता घट जाती है। अंगूर विभिन्न प्रकार की भूमि में पैदा किया जा सकता है परंतु इसके लिये जल निकास युक्त हल्की दोमट भूमि सर्वश्रेष्ठ रहती है। भूमि का pH मान 6.5–7.5 खेती हेतु उपयुक्त रहता है। मृदा में चूने की अधिकता को यह सहन नहीं कर पाता है। क्षारीय भूमि में अंगूर की खेती के लिए क्षार प्रतिरोधी मूलवृन्त जैसे साल्ट क्रीक, टेलकी–5ए, डॉगरिज, 1616 तथा 1613 का उपयोग करना चाहिए।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

अंगूर की किस्मों को केनिग (डिब्बाबंदी) रसदार, किशमिश, खाने योग्य एवं शराब बनाने में उपयोगिता के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। इसकी मुख्य किस्में निम्न प्रकार से हैं :–

रसदार : चेम्पियन, अनाब–ए–शाही, बैंगलोर ब्लू, कोनकोर्ड, बैंगलोर परपल, अर्ली मस्कट, काली साहेबी, ब्यूटी सीडलेस, पर्ल ऑफ कसाबा, डीलाइट।

किशमिश के लिए : ताजा अंगूर को सुखाकर उसे 17 प्रतिशत नमी तक लाकर किशमिश बनायी जाती है। किशमिश बनाने में प्रयुक्त किस्मों का मिठास मान 20–22 डिग्री ब्रिक्स (TSS) रखते हैं। ब्यूटी सीडलेस, पूसा सीडलेस, थॉम्पसन सीडलेस (इसके क्लोन प्रमुखतः ताश–ए–गणेश, सोनाका, मनिक चमन), किशमिश चार्नी, शरद सीडलेस (किशमिश चार्नी का उत्परिवर्तन), सुल्तानिया।

केनिंग (डिब्बा बंदी) : थॉम्पसन सीडलेस, पूसा सीडलेस, परलेट, ब्लैक चम्पा, पर्ल ऑफ कसाबा,

मुनक्का के लिए: अनाब–ए–शाही, गुलाबी, दिलखुश (अनाब–ए–शाही का क्लोन)

खाने योग्य (Table Varieties) : रसदार किस्मों की तरह मिठास मान 12–20 डिग्री ब्रिक्स होना चाहिए। डीलाइट, परलेट, न्यू परलेट, मसकट ऑफ हेम्बर्ग, भोकरी, कार्डिनल, अनाब–ए–शाही, ब्लेक मस्कट, अर्ली मस्कट, फ्लेम सीडलेस,

ब्यूटी सीडलेस, रेड ग्लोब (बड़े आकार के फल)

शराब के लिए : इस हेतु मिठास मान 24 डिग्री ब्रिक्स से अधिक होना चाहिए किस्में– चैम्पियन, अनाब–ए–शाही, थोम्पसन सीडलेस, पूसा सीडलेस, बैंगलोर परपल, ब्यूटी सीडलेस, हिमरोड, अर्का श्याम, अर्का कंचन, चीमा साहेबी, रूबी रेड, रेड प्रिन्स, मेडेलिन एन्जेविन, भोकरी।

भारतीय बागवानी अनुसंधान संस्थान, बैंगलोर द्वारा 1980 में अंगूर की चार संकर किस्मों जैसे : अर्कावती, अर्का कंचन, अर्का हन्स एवं अर्का श्याम का विकास किया गया है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा पूसा सीडलेस (चयन विधि द्वारा) पूसा नवरंग (मेडेलिन अनजीवाइन ×रूबीरेड) एवं पूसा उर्वशी (हूर × ब्यूटी सीडलेस) विकसित की गई हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

अंगूर के प्रर्वधन का सबसे उत्तम तरीका कलम द्वारा है। कलम बनाने का उत्तम समय जनवरी माह है। कलम लगभग 30 सेमी. लम्बी तथा मध्यम मोटाई की छाँटनी चाहिये।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

पौध लगाने का सबसे अच्छा समय जनवरी–फरवरी माह है। अंगूर साधारणतया आयताकार या वर्गाकार विधि से लगाया जाता है। पौधे से पौधे व कतार से कतार की दूरी वहाँ की जलवायु, भूमि की किस्म व पौधे की किस्म पर निर्भर करती है। पौधों को साधारणतया 2.5 से 3 मीटर के दूरी पर लगाया जाना ज्यादा अच्छा रहता है। जिस खेत में अंगूर के पौधे लगाने हो, वहाँ पौधे लगाने के समय से कुछ दिन पूर्व 1×1×1 मीटर आकार के गड्ढे खोदकर कुछ दिन के लिये खुला छोड़ देना चाहिये। इसके बाद प्रत्येक गड्ढे में 25 किलो गोबर की सड़ी हुई खाद तथा आधा किलोग्राम सुपर फॉस्फेट एवं 50 से 100ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत देना चाहिये।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer)

अंगूर के पौधों को निम्न तालिका 10.15 के अनुसार खाद एवं उर्वरक देवें।

खाद व उर्वरक की मात्रा देते समय ध्यान रखना चाहिये कि देशी खाद कटाई छँटाई के तुरन्त बाद दी जाये एवं यूरिया की आधी मात्रा तथा फॉस्फोरस व म्यूरेट ऑफ पोटाश की पूरी मात्रा देशी खाद के साथ ही मिट्टी में मिला दी जाये। सुपर फॉस्फेट खाद गहरी खुदाई करने के बाद देनी चाहिये। यूरिया की आधी मात्रा अप्रैल माह में फल बनने पर देनी चाहिए।

सारणी 10.15 : खाद एवं उर्वरक

	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा में			
आयु वर्षों में	देशी खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	20	0.20	0.25	-
2	40	0.40	0.50	-
3	50	0.60	1.00	0.20
4	60	0.80	1.50	0.40
5 और उसके बाद	70	1.00	2.00	0.40

सिंचाई एवं निराई गुड़ाई (Irrigation & interculture)

अंगूर की खेती में सिंचाई की मात्रा, जलवायु, भूमि तथा बेलों की आयु पर निर्भर करती है। अंगूर की उपयुक्त उपज लेने के लिये यह आवश्यक है कि समय समय पर उसकी सिंचाई की जाये। सिंचाई का विशेष महत्व कटाई–छँटाई के बाद से फलों के पकने तक है। इसके बाद इसकी सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसलिये कटाई–छँटाई के बाद व खाद देने के तुरन्त बाद सिंचाई कर देनी चाहिये। फल तोड़ने से एक सप्ताह पूर्व सिंचाई बंद कर दे इससे फलों की मिठास बढ़ जाती है। सिंचाई के बाद निराई गुड़ाई करना तथा खरपतवारों को निकालते रहना बहुत आवश्यक है लेकिन खरपतवारों को नष्ट करने के लिए 2, 4–डी का प्रयोग कभी भी नहीं करना चाहिये।

संधाई व काट–छाँट (Training & pruning)

पौधों का आकार सुनियोजित करने के लिये तथा उनसे अधिकतम आय प्राप्त करने के लिये उनकी ट्रेनिंग बहुत जरूरी है। इसके लिये बेलों/शाखाओं की समय से कटाई–छँटाई कर उनको एक निश्चित आकार में विकसित किया जाता है।

इसके लिये जैसे–जैसे पौधा बढ़े तथा उस पर पार्श्व शाखाएँ पैदा हो, उन्हें बढ़ने न दिया जाये जिससे पौधा पहले केवल लम्बाई में ही बढ़ सके। इसके बाद प्रत्येक पौधे के साथ 15 से 20 सेमी. की दूरी पर एक तीन मीटर लम्बा बांस गाड़ देना चाहिये जिसके सहारे बेल चढ़ सके। बांस के निचले हिस्से पर एक फुट डामर पोत देना चाहिये ताकि दीमक न लगे।

अंगूर के पौधों की ट्रेनिंग निम्नलिखित विधियों से की जा सकती है।

1. शीर्ष विधि : इस विधि से सधी हुई लता झाड़ीदार होती है जिसका तना 75–90 सेमी. ऊँचा तथा सीधा होता है। इस तने के शीर्ष पर 5–6 छोटी छोटी शाखाएँ फैलती हैं। शुरू के कुछ वर्षो में लता को एक सहारे की आवश्यकता होती है। लेकिन जब चार पाँच वर्षो में तना काफी मजबूत हो जाता है। तो फिर सहारे की आवश्यकता नहीं होती है। इन मुख्य शाखाओं पर निकले कल्ले जब एक वर्ष पुराने हो जाये तो जाड़े के दिनों में उन्हें दो तीन गाँठों पर काट दिया जाता है। इनके ऊपर मार्च के

महीने में कल्ले निकलते हैं जिन पर फूलों का गुच्छा निकलता है। यह विधि कम बढ़ने वाली किस्में जैसे ब्यूटी सीडलेस, परलेट के लिये उपयुक्त है।

2. निफिन विधि : यह विधि विलियम निफिन द्वारा न्यूयार्क में 1850 में विकसित की गई, जिसमें लोहे या लकड़ी के खम्बे के सहारे दो तार भूमि में क्रमशः 1.05 व 1.65 मीटर की ऊंचाई पर एक छोर से दूसरे छोर तक बाँध दिये जाते है। खम्भों की दूरी 4.8 मीटर रखनी चाहिये। लता को भूमि से 1.65 मीटर की ऊँचाई से काट दिया जाता है तथा तारों के साथ दोनों दिशाओं में स्थाई रूप से बगल की चार शाखाएँ विकसित की जाती है। इन शाखाओं पर फैलने वाले केन (एक वर्ष पुरानी परिपक्व शाखा) अच्छी तरह से विकसित किये जाते हैं। इन केनों के फैलने के लिये 7–12 गाँठों तथा दलपुट बनाने के लिये 1 से 2 गाँठों पर काटा जाता है। मध्यम ओजस्वी किस्में जैसे थॉम्पसन सीडलेस, परलेट के लिये यह विधि उपयुक्त है।

3. टेलीफोन विधि : इस विधि में 3.5 से 4.8 मीटर की दूरी पर खम्भे गाड़े जाते है इन खम्भें के ऊपरी भाग पर 1.2 मीटर लम्बी भुजाये होती हैं। प्रत्येक भुजा में तीन छेद बने होते हैं तथा इन छेदों में से तीन तार कतारों में बाँधे जाते हैं। लता को 1.8 मीटर की ऊँचाई पर काट दिया जाता है तथा 5 से 6 शाखाएँ अच्छी प्रकार से फैलायी जाती है। इस तरह साधी गयी शाखाओं की काट–छाँट निफिन विधि की तरह करते हैं। यह विधि भी मध्यम ओजस्वी किस्में जैसे परलेट, थॉम्पसन सीडलेस के लिये उपयुक्त है।

4. पंडाल विधि : इस विधि को परगोला, बावर व आरबोर के नाम से भी जानते हैं, इस विधि में 4.5 से 6 मीटर की दूरी पर 1.95 से 2.10 मीटर ऊँचे खम्बे गाड़ दिये जाते हैं। इन्हीं खम्बों से तार खड़े व आड़े दोनों तरह से 45 से 60 सेमी की दूरी पर खींचे जाते हैं। लताओं को इसी जाली के ऊपर साधा जाता है एवं मुख्य लता को 7 फुट तक बढ़ने दिया जाता है। इसके पश्चात् दो प्राथमिक शाखाएँ प्रत्येक 4 फुट तक बढ़ने दे, फिर काट दें। प्रत्येक प्राथमिक शाखा पर 16 से 20 तक द्वितीय शाखायें रखते है। इसके पश्चात् तृतीय शाखाओं का प्रति वर्ष कृन्तन करते हैं।

कृन्तन (Pruning)

अंगूर की बेलें उत्तरी भारत में सर्दी के मौसम में सुषुप्त रहती हैं। अतः बेलों की कटाई–छँटाई का समय इसी सुषुप्तावस्था में अर्थात जनवरी माह है। कटाई–छँटाई ना करने पर उपज में कमी आ जाती है। इसलिये फलों को व्यवस्थित, आकार में रखने और अच्छी पैदावार लेने के लिये कटाई–छँटाई करना अति आवश्यक है। दक्षिण भारत में साल में दो बार प्रूनिंग करते हैं पहली सर्द मौसम के आरम्भ में (अक्टूबर–नवम्बर) जिसे फारवार्ड प्रूनिंग कहते हैं तथा दूसरी अप्रैल माह में करते हैं उसे बैक या फाउण्डेशन प्रूनिंग कहते हैं। कटाई–छँटाई करने के लिए निम्न बातों का अवश्य ध्यान रखना चाहिए।

किस्म के अनुसार तृतीय शाखाओं पर जो कि एक वर्ष पुरानी होती है, उनके करीब 60 प्रतिशत केन पर कलिकाओं की संख्या परलेट में 4–5 व थॉम्पसन सीडलेस, ब्यूटी सीडलेस में 5–8 रखनी चाहिये तथा शेष 40 प्रतिशत केन पर 2 कलिकायें रखे।

कमजोर, सूखी एवं रोगग्रस्त शाखाओं को काट देना चाहिये।

जितनी कलियाँ शाखा पर रखनी हो उसके बाद अन्तिम कलिका से आगे आधा इंच तना छोड़कर काटना चाहिये।

कटाई–छँटाई करते समय तने की उखड़ी हुई छाल को हटाकर ताम्र युक्त फफूंद नाशक (ब्लाईटॉक्स 50 या ब्ल्यूकॉपर आदि) का लेप बनाकर लगा दें।

समय समय पर तने के बंधन को ढीला करते रहे तथा तारों को खींचते रहें।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीट–नाशीजीव व व्याधियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.16

दैहिक विकार (Physiological disorders)

कलियों, फूलों एवं फलों का गिरना (Buds, flowers and fruits drop) : मुख्यतःइन ही समस्याओं जिसमें अंगूर के गुच्छे में उपस्थित फल या तो छोटा रह जाता है या सामान्य आकार प्राप्त नहीं कर पाता जबकि अण्डाशय रहता है इस दशा को मिलारेन्डेज (Millerandage) तथा अंगूर के पुष्प गुच्छों का भली प्रकार फल ठहराव न होने को कोल्यूर (Coulure) कहते हैं। तीन अवस्था में यह समस्या देखी जा सकती है –

1. प्रथम अवस्था में गोल्ड, थॉम्पसन सीडलेस तथा किशमिश बेली किस्मों में पुष्प गुच्छों के खिलने से पूर्व अथवा पूर्णतः खिलने के 5 से 7 दिन बाद गिर जाते हैं।
2. द्वितीय अवस्था में अनिषेचित व क्रियात्मक रूप से कमजोर फल लगने के तुरन्त बाद गिरना शुरू हो जाते हैं और यह क्रिया लगातार चलती रहती है।
3. तृतीय अवस्था में ब्यूटी सीडलेस तथा अर्ली मस्कट किस्मों में फल पकते समय गिरना शुरू हो जाते हैं।

फल गिरने के प्रमुख कारणों में अनुचित ढंग से नत्रजन

का उपयोग, कार्बोहाइड्रेट पोषण, अनुचित फूलों के निषेचन, अधिक फलन, फलों का एक समान समय पर न पकना, फलों की अनियमित वृद्धि एवं ऑक्जीन हार्मोन की कमी आदि हैं। इसके निवारण के लिए निम्न उपाय अपनाये जा सकते हैं –

1. नत्रजन उर्वरकों का उचित मात्रा में प्रयोग उचित समय पर करना चाहिए।
2. फूल खिलने से 7–10 दिन पूर्व शाखाओं या मुख्य तने से 0.5 सेमी. चौड़ी छाल उतार दें।
3. पुष्पन की अवधि में सिंचाई रोक देनी चाहिए।
4. फूल खिलने से पहले 0.2 प्रतिशत बोरिक अम्ल का छिड़काव करें।
5. फलों का रंग बदलने की अवस्था में 500 पी.पी.एम. इथेफोन का छिड़काव करें या गुच्छों को इस घोल में डुबोएँ।

शॉट बेरीज (Shot berries) : इस विकार में अंगूर के फल अविकसित, सख्त व खाने में बेस्वाद हो जाते हैं। यह समस्या उत्तरी भारत में परलेट किस्म में अधिक पायी जाती है। इस समस्या को सही काट–छाँट या दानों एवं गुच्छों के विरलीकरण द्वारा कम किया जा सकता है। जब गुच्छों में 50 प्रतिशत फल बन जाएँ उस अवस्था पर इथेफॉन का 25 पीपीएम की घोल में गुच्छों को डुबोकर उपचारित करें।

पिंक बेरी (Pink berry) : यह महाराष्ट्र में थोम्पसन सीडलेस किस्म का एक मुख्य विकार है। इस विकार में अंगूर के गुच्छों में लगे कुछ दानों पर तुड़ाई के पहले अनचाहा गुलाबी रंग आ जाता है तथा यह दाने खाने में अच्छे नहीं लगते हैं। अधिक तापमान की दशाओं में गुलाबी दाने बनने का विकार अधिक होता है।

चिकन व मुर्गी विकार (Hen and chicken disorder) : इस विकार में गुच्छों के आधार पर दानों का विकास पूर्ण एवं सही होता है परन्तु गुच्छे के अग्रिम भाग में दाने पूर्णतः विकसित नहीं होते हैं। इस विकार का मुख्य कारण बोरान सूक्ष्म तत्व की कमी है। इसके नियंत्रण के लिए 0.2 प्रतिशत बोरिक अम्ल के घोल का छिड़काव करना चाहिए।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield) :

फलों का रंग जैसे ही हरे से हल्का पीला या लाल में बदलने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फल पकने की स्थिति में आ गये है। इस पकने की अवस्था को वर्जेन (Veraison) कहते हैं। फूल आने के बाद लगभग 3 से 4 माह बाद फल तैयार हो जाते हैं। बीज रहित किस्मों में जिब्रेलिक अम्ल का उपचार उपज की वृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान देता है। इसके लिये 25–50 पी पी एम अम्ल (25 से 50 मिली ग्राम प्रति लीटर पानी) के घोल में, गुच्छों को फल बनने के 10 से 12 दिन बाद डुबोयें। साधारणतया इसकी उपज 10 से 15 किलो प्रति बेल तथा 120–200 क्विंटल प्रति हेक्टेयर प्राप्त होती है। अंगूर के फलों का भण्डारण 0–2 डिग्री सेल्सियस तापमान व 80–85 प्रतिशत आर्द्रता पर 6–8 सप्ताह तक किया जा सकता है। आजकल ग्रेप गॉर्ड के नाम से (सोडियम मेटा बाई सल्फाइट) से उपचारित कागज का पाउच बॉक्स में पैकिंग के समय रखने से भण्डारण अवधि को साधारण तापमान पर भी 3–4 दिन बढ़ा सकते हैं।

सारणी 10.16 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट–नाशीजीव / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–अंगूर का भृंग (पत्ती–बीटल) (Flea beetle - *Scelodonta strigicollis*)	वयस्क चमकीले एवं ताम्र रंग के होते हैं। मादा छाल के नीचे अण्डे देती है। अण्डे से लटें (ग्रब) तथा जड़ों पर निर्वाह करती है। इस कीट की क्रियाशीलता मार्च से नवम्बर तक पाई जाती है। वयस्क कीट नई कली को खाकर काफी नुकसान पहुँचाते है।	केले के बीटल की तरह नियंत्रण करें।
2	चेफर बीटल *(Adoratus sp.)*	कीट रात के समय आक्रमण करता है तथा नरम पत्तियों को खाता है। नई पत्तियों एवं प्ररोहों पर इसका आक्रमण बहुत होता है। वर्षा शुरू होते ही इसका आक्रमण शुरू हो जाता है।	बेर फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
3	पर्णजीवी (थ्रिप्स) (*Rhipiphorothrips cruentatus*)	निम्फ व वयस्क दोनों अवस्था में पत्तियाँ व फूलों आदि का रस चूसते हैं। थ्रिप्स के आक्रमण से पत्तियों पर सफेद धब्बे पड़ जाते हैं तथा फल का आकार भी बिगड़ जाता है।	नियंत्रण पपीते के माहु की तरह करें।
4	मिली बग (*Ferrisia virgata)* एवं स्केल *(Macronellicoccus hirsutus)* कीट	अवयस्क (शिशु) प्रायः नवम्बर दिसम्बर में बाहर निकल कर तने के सहार ` चढ़ते हुए वृक्ष की कोमल टहनियों एव फूलों पर एकत्रित हो जाते हैं तथा रस चूस कर नुकसान पहुँचाते है। इसके द्वारा एक तरह का मीठा चिपचिपा पदार्थ छोड़ा जाता है जिससे काला कवक लग जाता है।	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
5	नाशीजीव– मूल ग्रन्थी (सूत्र कृमि) अंगूर डेगर सूत्रकृमि (जिम्फिनिमा), मूल ग्रंथी सूत्रकृमि व रेनीफार्मड सूत्रकृमि	इसके आक्रमण से जड़े फूलकर गाँठों का रूप धारण कर लेती हैं। इसका प्रकोप हल्की मृदा कण वाली भूमि में ज्यादा होता है। यहाँ डेगर सूत्रकृमि फेन लीफ विषाणु रोग का संचरण करते हैं।	पपीते फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
6	व्याधि– छाछ्या (पाउडरी मिल्डयू या चूर्णी फफूंद) :– यह रोग (*Uncinula* necator) कवक से।	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
7	मृदुरोमिल आसिता (तुलासिता या डाऊनी मिल्डयू): *(Plasmopara viticola)* नामक कवक	प्रभावित पत्तियों की ऊपरी स तह पर अनियमित हल्के पीले से गहरे भूरे रंग धब्बे दिखाई पड़ते है जिनकी निचली सतह पर कवक की वृद्धि मिलती है।	नियंत्रण हेतु गिरी हुई टहनियों को नष्ट कर देना चाहिये। जाइनेब या मेनकोजेब 2 ग्राम अथवा ताम्रयुक्त कवकनाशी 3 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर छिड़काव करने चाहिए।
8	एन्थ्रेक्नोज (श्यामवर्ण) (*Elsinoe ampelina*) नामक कवक	रोग के प्रभाव से लताओं के तनों, शाखाओं, पत्तियों व फलों पर भूरे रंग के धब्बे बनते है जो आकार में बड़े होने पर स्लेटी रंग के हो जाते हैं	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।

आँवला (AONLA)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
इम्बलिका ऑफिसिनेलिस गर्टन.
(Emblica officinalis Gaertn.)
कुल (Family) : यूफोरबिएसी *(Euphorbiaceae)*
गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 28
खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
फल भित्ती (Pericarp)
उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : भारत
फल का प्रकार (Fruit type) : सरस (Berry)

आँवला बहुत ही पौष्टिक फल है और इसमें विटामिन 'सी' (600मिग्रा / 100 ग्राम गूदे) प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसका उपयोग अधिकतर मुरब्बा एवं चटनी के रूप में किया जाता है। आंवले के फलों का स्वाद अम्लीय तथा कसेलापन लिये हुए होता है आयुर्वेदिक चिकित्सा–प्रणाली में आँवले का प्रयोग अनेक प्रकार की दवाएँ जैसे च्यवनप्राश, त्रिफला, आरोग्य वर्धनी इत्यादि के निर्माण में किया जाता है। हमारे देश में मुख्य रूप से आँवले का उत्पादन उत्तर प्रदेश में होता है। उत्तर प्रदेश राज्य का प्रतापगढ़ जिला पूरे भारतवर्ष में आँवला उत्पादन हेतु प्रसिद्ध है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

यह उष्ण से उपोष्ण जलवायु में बहुत अच्छी तरह पनपता है, आँवले के परिपक्व पौधों को पाले से अत्यधिक हानि होती है एवं ऐसे पौधों पर उच्च तापमान का भी कोई प्रभाव नहीं पड़ता। गर्म जलवायु फूल आने में सहायक होती है। इसके पौधे अधिक सहिष्णु होने के कारण विभिन्न प्रकार की मिट्टी में उगाये जा सकते है। इसके लिये करीब 2 मीटर गहरी भूमि की आवश्यकता होती है। इसके लिये गहरी दोमट भूमि जिसमें उचित जल निकास प्रबन्धन हो, सर्वोत्तम है। क्षारीय भूमियों में (7.0 से 9.0 पी.एच. विद्युत चालकता 9.0 मिली म्होज प्रति सेमी. एवं विनिमयशील सोडियम (ESP) 35–40 प्रतिशत) भी आँवले की खेती की जा सकती है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

भारत में आँवलें की उन्नत किस्मों के परिपक्वन समय के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसेः–

1. **अगेंती किस्में (मध्य अक्टूबर से मध्य नवम्बर)**– बनारसी, नरेन्द्र आँवला–9 (एन.ए.–9), बलवन्त, गोमा ऐश्वर्या
2. **मध्यम किस्में (मध्य नवम्बर से मध्य दिसम्बर)**– फ्रेन्सिस(हाथीझूल),नीलम(एन.ए.–7),कंचन(एन.ए.–4), कृष्णा (एन.ए.–5), अमृत (एन.ए.–6), आनन्द–1, आनन्द–2, आनन्द–3 आदि।
3. **पछेती (मध्य दिसम्बर से मध्य जनवरी)** – चकैया, भावनी सागर (बी.एस.आर.1), लक्ष्मी–52,

प्रवर्धन (Propagation)

इसका प्रवर्धन पैच कलिकायन विधि द्वारा किया जाता है। पुराने वृक्षों का शिखर रोपण (Top working) भी किया जा सकता है।इससे निम्न कोटि के बीजू पेड़ उच्च किस्म में परिवर्तित किये जा सकते हैं।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

इसके पौधों को 8×8 मीटर की दूरी पर जून–जुलाई के महीने में पहले से तैयार किये गये गड्ढों में लगाया जाता है। सिंचाई के लिए पानी की सुविधा होने पर पौधे फरवरी–मार्च में भी लगाये जा सकते है। पेड़ लगाने के लिए 1×1×1 मीटर आकार का गड्ढा निश्चित दूरी पर खोदा जाता है। इन गड्ढों में 20 से 25 किग्रा. गोबर की सड़ी खाद तथा 1 किलो सुपर फॉस्फेट, 50 से 100 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण प्रति गड्ढे के हिसाब से मिलाकर गड्ढों को भरकर पौधा लगाया जाता है।

सारणी 10.17 : खाद एवं उर्वरक

पेड़ों की आयु वर्ष में	मात्रा किलोग्राम प्रति पेड़			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	10	0.22	0.35	0.125
2	20	0.44	0.70	0.250
3	30	0.66	1.05	0.375
4	40	0.88	1.40	0.375
5 और उसके बाद	50	1.10	1.75	0.375

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

आँवले के पौधे को निम्न तालिका 10.17 के अनुसार खाद एव उर्वरक देना चाहियेः

जनवरी –फरवरी के महीने में पेड़ के चारों तरफ फैलाव में नाली बनाकर खाद एवं उर्वरक देना चाहिये। गोबर की खाद, सुपर फॉस्फेट, म्यूरेट ऑफ पोटाश की मात्रा तथा यूरिया की आधी मात्रा जनवरी–फरवरी में दें तथा यूरिया की शेष मात्रा अगस्त में देना लाभदायक है। इसके अतिरिक्त बोरेक्स 0.6 प्रतिशत घोल का छिड़काव फूल लगने की क्रिया को तेज करता है तथा फलों को झड़ने से बचाता है।

सिंचाई एवं अन्तराशस्य (Irrigation & interculture)

प्रारम्भ के तीन वर्षों में कूष्माण्ड कुल की सब्जियों के अतिरिक्त सभी प्रकार की सब्जियाँ ग्वार, मटर, चौला, मिर्च, बैंगन, प्याज आदि ली जा सकती हैं। आँवला के पौधे को वर्षा एवं सर्द ऋतु में सिंचाई की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मार्च के महिने में जब नई कोपलें निकलने लगे तो सिंचाई करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। जून माह तक कुल पन्द्रह दिन के अन्तराल से चार–पाँच सिंचाईयों की आवश्यकता होती है।

फलन (Fruiting)

आंवला में बसंत ऋतु में फूल आते हैं। फूल तीन सप्ताह तक खिलते हैं। फूल निश्चित बढ़वार वाली शाखाओं पर आते हैं। मादा फूल शाखा के ऊपरी सतह पर तथा नर फूल शाखा के निचली सतह पर आते हैं। फूलों में पर–परागण की क्रिया से सेचन होता है। निषेचन के बाद युग्मक सुषुप्तावस्था में चले जाते हैं जिसे युग्मक सुषुप्त भी कहते हैं गर्मी में फलों में किसी भी प्रकार की वृद्धि का आभास नहीं होता है। युग्मक की सुषुप्तावस्था जुलाई–अगस्त में समाप्त हो जाती है। तथा उसके बाद फलों का विकास शुरू हो जाता है। फल नवम्बर–दिसम्बर में परिपक्व हो जाते हैं। आँवलों में स्वयं असंगतता (Self incompatibility) भी देखी गई है। अतः अच्छे फल के लिय परागक किस्म लगाना आवश्यक होता है। चकैया, एन.ए. 6 और कृष्णा किस्म एन.ए.–7 के लिये परागक का कार्य करती है। अच्छे फलन के लिये आँवला के बाग में 5 प्रतिशत परागक किस्म को लगाना चाहिए।

संधाई व काट–छाँट (Training and pruning)

आँवले के पौधों को अच्छा ढांचा देने के लिए प्रथम दो वर्ष तक पौधे को जमीन से लगभग 60–70 सेमी. की ऊँचाई तक अकेले बढ़ने देना चाहिए। इसके बाद दो से चार शाखाएँ विपरीत दिशाओं में निकलने देनी चाहिए। अनावश्यक शाखाओं को शुरू में हटाते रहना चाहिए। इसके बाद चार से छः शाखाओं को चारों दिशाओं में निकलने दें। आँवले में फल आने पर नियमित काट–छाँट की आवश्यकता नहीं होती। सूखी, रोगी, टूटी हुई, कमजोर व एक–दूसरे में फंसी हुई टहनियों को हटाते रहना चाहिए।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.18

आन्तरिक काला धब्बाः– यह बोरोन की कमी से होता है व फल अन्दर से कालापन लिये हुए होता है। यह विकार दूसरी

सारणी 10.18 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र. स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–छाल भक्षक कीट (*Inderbela tetraonis*)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
2	शूट गाल मेकर (Shoot gall maker)	पेड़ की डालियों का अग्रिम भाग एक गाँठ के रूप में फूल जाता है जिसमें काले रंग का कीड़ा पाया जाता है।	गाँठ को तोड़ कर जला देवें तथा क्लोरोपाइरिफॉस 125 मि.ली. प्रति लीटर पानी में घोल कर जून–जुलाई में छिड़काव करें
3	व्याधि–आँवले का रोली रोग (रस्ट) (*Revenelia emblica*)	इसके प्रकोप से अगस्त माह में पत्तियों पर रोली के धब्बे बन जाते हैं। पत्तों पर भूरे धब्बे बनते हैं जो कभी–कभी पूरे फल पर फैल कर काले हो जाते हैं। रोगी फल पकने से पहले ही झड़ जाते हैं जिससे बहुत हानि होती है।	नियंत्रण हेतु 2 ग्राम घुलनशीन गंधक अथवा क्लोरोथेलोनिल 2 ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से तीन छिड़काव जुलाई माह से 15 से 30 दिन के अन्तराल से करने पर फलों के रोग का लगभग पूर्ण नियंत्रण हो जाता है।
4	ब्लू मोल्ड (Blue mould) कवक (*Penicillium digitatum*, *P. citrinum* & *P. islandicum*)	फलों पर पहले भूरे रंग के जल युक्त चकते दिखाई पड़ते हैं। बाद में पीले, बैंगनी तथा नीले खण्ड में विभाजित हो जाता है। फलों से पीले रंग का तरल पदार्थ निकलता है और दुर्गन्ध आती है।	फलों को बोरेक्स या सोडियम क्लोराईड के घोल में उपचारित कर देने से संग्रहण के दौरान रोग नहीं फैलता। फलों की तुड़ाई उपरान्त 0.2 प्रतिषत बेलीटॉन या टोप्सीन एम से उपचारित करने पर 10 दिन तक इस रोग का नियंत्रण हो जाता है।

किस्मों की अपेक्षा फ्रांसिस किस्म में अधिक होता है। इसके नियंत्रण हेतु 6 ग्राम बोरेक्स प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव प्रथम अप्रैल, द्वितीय जुलाई एवं तृतीय सितम्बर माह में करें।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

आँवले का फल नवम्बर–दिसम्बर में पक कर तैयार होता है। परिपक्वता पर आँवले का रंग कुछ सफेदी लिए हुए हरा होता है। आँवले के फलों की तुड़ाई के समय फल जमीन पर न गिरने पाये अन्यथा ऐसे फलों पर काले धब्बे पड़ जाते हैं और बाद में भण्डारण के दौरान ऐसे फलों के सड़ने की सम्भावना रहती है जो दूसरे फलों को भी प्रभावित करते हैं। कलमी आँवले का पेड़ 4 से 5 वर्ष की आयु में फल देने लगता है। फूल मार्च–अप्रैल में आते हैं तथा फल नवम्बर–दिसम्बर में तोड़ने के लायक हो जाते हैं। एक पूर्ण विकसित कलमी आँवले का पेड़ 50–100 किलो फल देता है। आँवले के फलों की भण्डारण अवधि 15 दिनों तक बढ़ाने हेतु 12 डिग्री सेल्सियस तापमान व 90% आपेक्षिक आर्द्रता रखें। पानी में डुबोकर रखे तथा पानी को बदलते रहने से भी भण्डारण अवधि 1–2 सप्ताह तक अच्छी अवस्था में फलों को रख सकते हैं। वहीं नमक के विलयन में रखकर 15 दिन तक फलों को रख सकते हैं।

अनार (POMEGRANATE)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) :
प्यूनिका ग्रेनेटम एल. *(Punica granatum L.)*

कुल (Family) : पुनिकेसी (Punicaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 18

खाये जाने वाला भाग (Edible part) :
बीज आवरण (Aril)

उद्गम स्थल (Centre of origin) : इरान (Iran)

फल का प्रकार (Fruit type) :
बालूस्ता सरस (Balusta berry)

अनार उपोष्ण जलवायु का फल वृक्ष है, यह सूखा सहनशील होने के साथ–साथ कम लागत में अधिक आमदनी देता है। अनार के फल कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम, लौह तत्व, सल्फर के अच्छे स्रोत हैं। इसका प्रयोग खाने एवं रस के रूप में तथा सुखाकर किया जाता है। हमारे देश में इसकी खेती मुख्य रूप से महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, हिमाचल प्रदेश, कर्नाटक, राजस्थान एवं तमिलनाडु में की जाती है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & soil)

अनार एक उपोष्ण जलवायु का पौधा है तथा पाला व शुष्कता के प्रति सहिष्णु है। फल विकास एवं पकने के समय गर्म एवं शुष्क जलवायु होने पर उत्तम गुणवत्ता के फल लगते हैं। कम सर्दी वाले क्षेत्रों में यह पर्णपाती होता है जबकि उष्ण एवं उपोष्ण जलवायु में सदाबहार होता है।जल निकास युक्त गहरी, भारी दोमट भूमि इसकी खेती के लिए उपयुक्त रहती है। भूमि की गहराई एक मीटर से कम नहीं होनी चाहिए। अनार के पौधे 6.0 डेसी साइमन्स प्रति मीटर (dSm^{-1}) तक की लवणता तथा 6.78 प्रतिशत विनिमयशील सोडियम (ESP) को सहन कर सकते हैं।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

अनार की उन्नत किस्मों में नरमबीज (soft seeded) वाली किस्में जैसें:– गणेश, जालौर सीडलेस, मृदुला, जोधपुर रेड, जी–137 के साथ वर्तमान में गहरे लाल बीजावरण वाली भगवा (सिन्दूरी) किस्म भारत वर्ष में उगाई जा रहीं है।

अन्य किस्में फूले अरक्ता, कन्धारी, मस्कट, ज्योति, जी. के.वी.के.–1, पी–26 सुपर भगवा, वन्डर इत्यादि हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

अनार के पौधे कलम एवं गूटी द्वारा तैयार किये जाते हैं। आजकल टिश्यू कल्चर से भी व्यवसायिक स्तर पर पौधे तैयार किये जा रहे है। कलम लगाने के लिये फरवरी माह अधिक उपयुक्त है वहीं गूटी बाँधने का उपयुक्त समय वर्षा ऋतु में होता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

पौधे लगाने का अच्छा समय वर्षाकाल है परन्तु सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो तो अनार के पौधे फरवरी मार्च में भी लगाये जा सकते हैं। पौधे लगाने के एक माह पूर्व 5×5 मीटर की दूरी पर 60×60×60 सेमी. आकार के गड्ढे खोद लेने चाहिये। इसको 10–15 दिन खुला रखने के बाद ऊपर की मिट्टी में अच्छी सड़ी हुई 15–20 किलो गोबर की खाद, आधा किलो सुपर फॉस्फेट तथा 50–100 ग्राम क्यूनॉलफॉस 1.5 प्रतिशत चूर्ण मिलाकर गड्ढे को भर देना चाहिये तथा सिंचाई कर देनी चाहिये। वर्षा के शुरू होने पर उनमें पौधे लगा देने चाहिये।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

अनार के पौधों को निम्न तालिका 10.19 के अनुसार खाद एवं उर्वरक देवें।

सारणी 10.19 : खाद एवं उर्वरक

आयु वर्षों में	मात्रा किलोग्राम प्रति पौधा में			
	गोबर की खाद	यूरिया	सुपर फॉस्फेट	म्यूरेट ऑफ पोटाश
1	8–10	0.10	0.25	0.50
2	16–20	0.20	0.50	0.50
3	24–30	0.30	0.75	1.00
4	32–40	0.40	1.00	1.50
5 वर्ष और उसके बाद	40–50	0.50	1.25	1.50

देशी खाद सुपरफास्फेट की पूरी मात्रा एवं यूरिया की आधी मात्रा फूल आने के करीब 6 सप्ताह पूर्व देवें। यूरिया की शेष आधी मात्रा फल बनने पर देवें।

सिंचाई एवं अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture)

पौधे लगाने के तुरन्त बाद सिंचाई करनी चाहिये। फिर रोपाई के 10–15 दिन तक हर दो तीन दिन बाद पौधों की सिंचाई आवश्यक है। गर्मी के मौसम में सिंचाई 7–10 दिन के अन्तर पर करें एवं सर्दी में आवश्यक हो तो 15–20 दिन के अन्तर पर करनी चाहिये। ड्रिप सिंचाई के तहत (0.8 वाष्पीकरण स्थिरांक के अनुसार) सर्दियों में एक दिन अन्तराल पर (32 से 38 लीटर प्रति दिन की दर पर अक्टूबर से जनवरी तक) तथा गर्मियों में नियमित (55 से 60 लीटर प्रति दिन फरवरी से मई तक पानी दें) बाग को खरपतवार से मुक्त रखने के लिये समय समय पर निराई गुड़ाई करना आवश्यक होता है। सर्दी की ऋतु के अन्त में सूखी एवं रोग ग्रस्त टहनियों को काटकर अलग कर देना चाहिये।

आरम्भ के तीन वर्षों तक बाग में कुष्माण्ड कुल की सब्जियों के अतिरिक्त सभी प्रकार की सब्जियाँ जैसे मटर, ग्वार, चौलाई, मिर्च, बैंगन आदि ली जा सकती हैं।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & Praning)

अनार में संधाई बहुतना विधि अपनाते हुए एक स्थान पर 4 तने रखकर अन्य शाखाओं को हटाते रहें इसके पश्चात छठे साल से इन चारों तनों के स्थान पर नये तने विकसित करें जो आंठवें साल फल देना प्रारम्भ कर देंगें। काट–छाँट हमें समय ≤ पर सूखी, टेड़ी–मेढ़ी, रोगी टहनियों को हटाते रहें तथा शाखा के शीर्ष भाग को हल्की काट–छाँट से हटाने (Nipping) पर पार्श्व शाखाओं को बढ़वार मिलती है।

फलन (Flowering)

अनार वर्ष में तीन बार फलता है।

1. फरवरी से मार्च (अम्बे बहार)2. जुलाई से अगस्त (मृग बहार) 3. अक्टूबर से नवम्बर (हस्त बहार)

तीनों बहारों में से एक इच्छित बहार जल उपलब्धता, बाजार भाव व फल गुणवत्ता आदि के अनुरूप चयन किया जाता है। वर्षा जल का समुचित उपयोग हेतु मृग बहार उचित है। जिसके लिए अप्रैल माह में पानी रोक देते हैं, मई में गड्ढों की खुदाई तथा खाद व उर्वरक दिया जाता है तत्पश्चात् जून में 2 हल्की सिंचाइयाँ जुलाई–अगस्त में पुष्पन में मदद करती हैं।

इनमें से जुलाई अगस्त वाली फसल अच्छी होती है तथा फल भी अच्छे होते हैं। पौधे की मजबूती एवं वृद्धि के लिये यह आवश्यक है कि आरम्भ के तीन वर्ष तक फसल नहीं ली जाये अतः इस समय यदि पेड़ों पर फूल आये तो भी उन्हें तोड़ देना चाहिये। रसायनों में इथरेल (Ethrel) 1–2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करके भी पौधे को तान (Stress) में लाया जा सकता है।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियाँ मे निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.20

फल फटना : इस दैहिक विकार समस्या का कारण मिट्टी में नमी का उतार–चढ़ाव व बोरान तत्व की कमी है। रोकथाम हेतु नियमित अन्तराल पर सही मात्रा में बाग में सिंचाई का प्रबन्ध करें तथा कुछ रसायनों में बोरान (0.2 प्रतिशत) या जिब्रेलिक अम्ल (40 पी.पी.एम.) का पर्णीय छिड़काव फल विकास अवस्था पर करें। जहाँ वातावरणीय समस्या हो वहाँ सहनशील किस्में जैसे बेदाना, रूबी, जोधपुर रेड उगायें। फलों को पकने की जल्दी अवस्था पर तुड़ाई करें।

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

फलों का रंग जैसे ही हरे से हल्का पीला या लाल में बदलने लगे तो समझ लेना चाहिये कि फल पकने की स्थिति में आ गया है। फूल आने के बाद लगभग 5 से 6 माह बाद फल तैयार हो जाते हैं। फलों को अंगुलियों से थपथपाने पर धात्विक आवाज (metalic sound) आती है। अनार के अच्छे विकसित पौधे से जिसकी उम्र 5–6 साल की हो, 20 से 22 किलो फल प्रति पौधे के हिसाब से प्राप्त हो जाते हैं। कमरे के तापमान पर 1 सप्ताह भण्डारण आसानी से कर सकते हैं यह फसल के समय व किस्म पर निर्भर करता है। अनार के फलों की 4.5 डिग्री सेल्सियस तापक्रम एवं 80–85 प्रतिशत आपेक्षित आर्द्रता पर 1–1.5 माह तक आसानी से भण्डारित कर सकते हैं।

सारणी 10.20 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र. स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–छाल भक्षक कीट (Bark eating cater pillar : *Inderbela tetraonis*)	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।	
2	अनार की तितली (Pomegranate butterfly : *Virachola (Deudorix) isocrates*)	मादा तितली पुष्प कली पर अण्डे देती है। इनमें लटें निकल कर बनते हुए फलों में प्रवेश कर जाती हैं। फल को अन्दर ही अन्दर खाती हैं फलस्वरूप फल सड़ कर गिर जाते हैं।	नियंत्रण हेतु बाग को साफ सुथरा रखना अति आवश्यक है। फूल व फल बनते समय कार्बोरिल 50 डब्ल्यू पी 2 से 3 ग्राम या क्यूनालफॉस 25 ई.सी. दो मिलीलीटर प्रति लीटर पानी के हिसाब से छिड़काव करें। फलों को थैली से ढकना (Fruit wrapping) भी कारगार उपाय है।
3	मिली बग	अवयस्क (शिशु) प्रायः नवम्बर दिसम्बर में क्रियाशील रहता है।	आम फसल के अनुसार नियंत्रण करें।
4	पत्ती मोड़क (बरूथी) (*Aceria granati*)	सितम्बर माह में बरूथी के प्रकोप से पत्तियाँ सिकुड़ कर मुड़ जाती हैं और पौधे की बढ़वार व फलन बुरी तरह प्रभावित होती है।	नियन्त्रण हेतु सितम्बर माह में क्यूनालफॉस 25 ई.सी. दो मिलीलीटर प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करना चाहिये। दूसरा छिडकाव 15 दिन बाद अवश्य दोहरायें।
5	व्याधि– पत्ती धब्बा एवं फल सड़न (*Cercospora punicae*)	वर्षा शुरू होते ही पत्तियों पर छोटे छोटे भूरे रंग के धब्बे बनते हैं तथा बाद में धब्बे भूरे काले रंग के हो जाते हैं।	वातावरण में अधिक नमी होने से फल एवं कलियों पर काले धब्बे बन जाते हैं तथा धीरे–धीरे रोगी फल सड़ जाते हैं। नियंत्रण हेतु टोपसिन एम एक ग्राम या जाइनेब का दो ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से 15 दिन के अन्तर पर छिड़काव करना चाहिये।
6	जीवाणु धब्बा (तेलियाँ धब्बा) जीवाणु (*Xanthomonas axonopodis* pv. *punicae*)	पत्तियों, टहनियों व फलों पर भूरे रंग के तेलिये धब्बें बनते हैं जो बाद में भूरे रंग में बदल जाते हैं तथा फल फट जाता है।	इस रोग के नियंत्रण में स्वस्थ पौधों के चयन के साथ कॉपर ऑक्सीक्लोराइड 3 ग्राम प्रति लीटर व स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 250 पी.पी.एम. का छिड़काव करना चाहिये। खेत को खरपतवारों से मुक्त रखना चाहिए।

खजूर (*DATEPALM*)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : फीनिक्स डक्टाइलीफेरा एल. (*Phoenix dactylifera* L.)

कुल (Family) : पामी या एरेकेसी (Palmae or Arecaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : X=18 2n=36

फल प्रकार (Fruit type) : अष्ठिल (Drupe)

खाये जाने वाला भाग (Edible part) : फल भित्ती (Pericarp)

उद्‌गम स्थल (Centre of origin) : खाड़ी प्रदेश–ईराक (Iraq)

खजूर एक प्राचीनतम फल वृक्ष है जो भारत के कच्छ (गुजरात) इलाके में बहुतायत में है। राजस्थान के जैसलमेर, बीकानेर, बाड़मेर तथा जोधपुर जिलों में खेती की जा रही है। इसके फल कार्बोहाइड्रेट्स (60–65%), लौह तत्व से भरपूर होते हैं जिन्हें ताजे फल (डोका अवस्था पर), मुलायम (पिंड) व सूखाकर (छुआरा) उपयोग में लिया जाता है।

जलवायु व मृदा (Climate & soil) :

खजूर की सफल खेती के लिये लंबी अवधि तक ग्रीष्म काल, बड़े दिन, पाला रहित वातावरण, पुष्पन व फलन के समय वर्षा रहित, मौसम आवश्यक है। एक अरबी कहावत के अनुसार इसके पौधे का सिर आग में व पाँव पानी में होना चाहिए । ऐसा क्षेत्र जहाँ 3300 उष्मा इकाई (हीट यूनिट) पुष्पन से फल परिपक्वन हो तो इसके उत्पादन के लिए अच्छा रहता है।

खजूर के अच्छे उत्पादन के लिए मृदा गहरी, रेतीली व दुमट उपयुक्त मानी जाती है। यह लवणीय तथा क्षारीय मृदाओं में आसानी से लगाया जा सकता है। 8–10 पी.एच. मान तक वाली भूमि में भी लगाया जा सकता है। ये मृदा के 4 प्रतिशत लवण सान्द्रता को सहन कर सकता है।

उन्नत किस्में (Improred varieties)

उपयोग के आधार पर वर्गीकरण कर सकते हैं:

ताजे फल खाने में (consumed as fresh)	अगेती व मध्यम मौसम की किस्में जिनमें खरास नहीं होती या गला नहीं पकड़ती तथा मीठी (25–45 % TSS) होती है। जैसे हलावी, खुनैजी (लाल रंग की), बरही, खलास आदि।
मुलायम फल वाली (Soft date)	जिनमें सुक्रोज शर्करा पूर्ण रूप से अपघटित या इन्वर्ट शर्करा में बदल जाती है। जैसे–जाहदी, हलावी, जागलूल, खदरावी आदि से पिंड खजूर बनाये जा सकते हैं।
सूखे फल या छुआरा बनाने वाली (Dry date)	इस प्रयोजन की किस्मों में आकार बड़ा व गूदा अधिक होना चाहिए जैसे जाहदी, मेडजूल, शामरान आदि।
विभिन्न प्रसंस्करण (Processing)	इनमें प्रयुक्त किस्मों में आकर्षक रंग व गूदा व उत्पादन से भरपूर होनी चाहिए। जैसे–हियानी(रंगीन), चीप–चेप, सूरिया, जामली, सगाई आदि।
नर मंजरी हेतु (Male perent)	परागण हेतु किस्मे जैसे घनामी, मधसरी, आलन सीटी आदि।

प्रवर्धन (Propagation) : वैसे तो खजूर का प्रवर्धन बीज द्वारा भी किया जाता है परन्तु बीजू पौधों की गुणवता कायिक विधि द्वारा किये गये पौधों की तुलना में कम होती है। खजूर में कायिक प्रवर्धन अन्तः भूस्तारियों (ऑफ शूट) द्वारा तैयार किया जाता है। मुख्य वृक्ष से सकर्स अलग करते समय यह ध्यान रहें कि उनका वजन कम से 6 किलोग्राम अवश्य हो। खजूर के बगीचे में नर एवं मादा पौधों का अनुपात 1 : 10 का रखना चाहिये। नर पौधों का अनुपात अधिक हो तो उन्हें हटा देना चाहिए। आजकल उत्तक संवर्द्धन से खजूर के गुणवत्ता युक्त पौधे तैयार किये जा रहे हैं तथा इन पौधों की खेत में स्थापना दर ऑफसूट पौधों की तुलना में अधिक होती है। परन्तु सोमाक्लोनल विविधता इन पौधो में देखने को मिलती है।

पौध रोपण विधि (Planting method) : ग्रीष्म काल (जून माह) में 1×1×1 मीटर आकार के 8×8 मीटर की दूरी पर गड्ढे खोद लेवें व गोबर की सड़ी खाद लगभग 25 किलोग्राम, 200 ग्राम सुपर फास्फेट व 50 ग्राम म्यरेट ऑफ पोटाश तथा 50 ग्राम क्युनालफॉस प्रति गड्ढा मिलाकर जुलाई अगस्त माह में रोपण करें। रोपाई के समय सकर्स को भूमि से 15 सेमी. ऊपर रखें व ध्यान रहे कि सिंचाई का पानी तने को छूने न पावें।

खाद एवं उर्वरक (Manure and fertilizer) : खजूर के फल देने वाले पौधे को 30 व 40 किलोग्राम सड़ी हुई गोबर की खाद सितम्बर माह में देवें। इसके अलावा प्रतिवर्ष 600 ग्राम नत्रजन, 100 ग्राम फास्फोरस तथा 700 ग्राम पोटाश प्रति वृक्ष मार्च अप्रैल माह में देना चाहिए।

सिंचाई व अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture): खजूर हेतु कहावत "सिर आग में पाँव पानी में (Head on fire and feet in water) होना चाहिए अर्थात् पानी की आवश्यकता ज्यादा है। अतः पौध रोपण के शुरूआत में नियमित तथा बाद में महीने में 2 बार सर्दियों में व 4 बार गर्मियों में देते रहें। फल बनते समय एवं बढ़वार के समय भूमि में पर्याप्त नमी बनाये रखें। अन्तराशस्यन में खजूर के वृक्षों के साथ बहुखंडीय (multistory) फलवृक्ष व अन्य पौधे रोपित कर सकते हैं जैसे अनार, फालसा,

पपीता व दलहनी फसलें जिससे बगीचे की आय में बढ़ोतरी व जगह का उपयोग होगा।

पुष्पन व फलन (Flowering & fruiting) खजूर में नर पुष्प पहले परिपक्व होते हैं (Protoandry)। अतः इन पुष्पक्रमों (Spadix) को काटकर अखबार पर (पराग रज) पाऊडर इकट्ठा कर लें तथा कुछ समय बाद निकलने वाले मादा पुष्पों पर रूई के फवे की सहायता से या डस्टर मशीन द्वारा कृत्रिम परागण करने से फलों की संख्या व गुणवत्ता बढ़ने से अधिक उपज प्राप्त होती है इस तरह पराग कणों का फल की गुणवत्ता बढ़ाने के प्रभाव को मेटाजिनिया (metaxenia) प्रभाव कहते हैं।

खजूर में पुष्पन व निषेचन के बाद फल बनना आरम्भ होता है, फल विकास की निम्न अवस्थाएँ होती हैः

1. गंडोरा (कीमरी) – फल कच्चे हरे व कठोर होते हैं।

2. डोका (खलल)– फल पूर्ण विकसित ठोस पीले या लाल (किस्मानुसार) रंग के होते हैं।

3. डेंग (रूतब)– फलों का शीर्ष भाग मुलायम होना शुरू हो जाता है।

4. पिंड (तमर)– पूर्णतः मुलायम फलों की अवस्था है।

राजस्थान में मुख्यतः डोका अवस्था पर ही फलों की तुड़ाई करते हैं क्योंकि इसकी पिंड अवस्था जुलाई–अगस्त में आ पाती है तथा उस समय वर्षा होने से फल खराब होने लगते हैं।

संधाई व कृन्तन (Training and pruning): खजूर एक बीज पत्री (Monocot) वृक्ष है। अतः शुरूआत में पार्श्व से ऑफ शूट निकालते रहने से एकल तना युक्त वृक्ष बनेगा जिस पर फलों के गुच्छे भरपुर होंगे तथा इनके मध्य वायु संचार अच्छा रहें इस हेतु जून माह में सूखी, पुरानी पत्तियों को काट देना चाहिए तथा प्रति वृक्ष 75–100 पत्तियाँ रखें।

पौध संरक्षण (Plant protection)

फसल को नुकसान पहुँचाने वाले विभिन्न कीटों व व्याधियों में निम्नलिखित प्रमुख हैं – सारणी 10.21

तुड़ाई व उपज (Harvesting & yield) : खजूर रोपण के 6–7 वर्ष बाद व्यावसायिक फलन में आता है। किस्म के अनुसार रंग परिवर्तन होने पर डोका अवस्था पर फलों की तुड़ाई करते हैं प्रति वृक्ष 75–100 किग्रा फल प्राप्त होते हैं। ताजे फलों को 1–1.5 डिग्री सेल्सियस व 85–90% आर्द्रता पर तथा सूखे फल भी इसी तापमान पर परन्तु 65–70% आर्द्रता पर क्रमशः 1 माह व 1 साल तक रख सकते हैं।

पिंड खजूर (Soft date) बनाने हेतु डोका अवस्था में तोड़े फलों को ब्लाचिंग (उबलते पानी में आधा मिनट रख) कर 40 डिग्री सेल्सियस तापमान पर विधुत चालित भट्टी (डिहाइड्रेटर) में रखते हैं तथा छुआरा (dry dates) बनाने हेतु डोका अवस्था के फलों को 5 मिनट ब्लाचिंग कर उन्हें विद्युत चालित भट्टी में 48–52 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 70–90 घण्टे या 80–120 घण्टे धूप में सुखा दें।

सारणी 10.21 : कीट एवं व्याधियाँ

क्र.स.	कीट / व्याधि	विवरण	प्रबंधन
1	कीट–ताड़ का घुन (Palm weevil) रायनोसेरस बीटल (*Oryctes rhinoceros*)	व्यस्क भृंग चमकदार काले–भूरे रंग का होता है। इस कीट की सूण्डी पौधे की जड़ों को नुकसान पहुँचाती है। प्रकोप से पौधा पीला पड़ जाता है।	प्रबंधन में फेरामोन ट्रेप (ल्यूर से आकर्षित करना चाहिए) व वयस्क को लाइट ट्रेप से तथा पौधे के पास नेफ्थलीन बोल्स रख देने से इसकी दुर्गंध से बीटल नहीं आता है तथा रसायनों में डाइजीनोन 20 ई.सी. दवा 2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से छिड़काव करें।
2	रेड पाम वीविल इल्ली (*Rhynchophorus ferrugineus*)	वयस्क लाल भूरे रंग का होता है। लार्वा एक भूरे रंग के सीर के साथ सफेद–पीला होता है। ये कीट जड़ को नुकसान पहुँचाता है तथा अन्दर से खोखला कर देता है।	प्रबंधन में संगरोध निषिद्ध (Quarantine) अपनाना चाहिए तथा प्रिडेटर (पलेटीमेरिस ओर्यक्ट्स) का उपयोग भी हितकर रहता है। रासायनिक उपचारों में डाइमीथोएट–30 ईसी का छिड़काव हितकारी है।
3	खजूर का स्केल (White palm- *Parlatoria blanchardii*) (Red palm - *Phoenicoccus marlatti*)	यह कीट नये युवा पौधे में अधिक नुकसान पहुँचाता है। इस कीट के निम्फ (Nimph) एवं वयस्क पत्तियों व नयी वृद्धियों का रस चूसकर उन्हें कमजोर बना देते हैं। प्रकोप मई–जून से शुरू होकर नवम्बर–दिसम्बर में गंभीर रूप ले लेता है।	प्रबंधन उपायों में प्राकृतिक शत्रुओं का उपयोग (लेडी बर्ड बीटल, क्राइसोपर्ला व प्रईंग मेंटिड आदि) तथा अगस्त माह में ईमीडाक्लोप्रिड 17 एस एल का 0.5 मिली प्रति लीटर छिड़काव करें।
4	खजूर का मोथ (Lesser date moth - *Batrachedra amydraula*)	कीट की लार्वा अपरिपक्व फलों को नुकसान पहुँचाते तथा उपज में भारी गिरावट आती हैं इस कीट का आक्रमण अप्रैल से अगस्त माह तक होता है तथा वर्षा आने पर सघनता बढ़ जाती है।	नियंत्रण उपाय में स्पाइनोसाइड का 0 .03 प्रतिशत का छिड़काव कारगर है।
5	व्याधि– अंतः भूस्तारी पौध गलन (Offshoot/ sucker rot) (*Fusarium*) तथा (*Botryodiplodia*) वंश की कवक	प्ररोह में गलन बड़ें खजूर के वृक्षों में भी धीरे–धीरे क्षय की ओर होते हैं इस समस्या को बायूद (Bayond) रोग कहते हैं।	रोग प्रबंधन में हमेशा सर्कस / ऑफ सूट स्वस्थ मातृ पौधे से ही लेना चाहिए तथा ऑफ सूट को कार्बेन्डाजिम (0.2%) या रिडोमिल (0.15%) कवकनाशी घोल में 2–5 मिनट डुबोकर ही रोपण करें।
6	ग्रेफियोला पत्ती धब्बा रोग स्मट कवक (False smut fungi) (*Graphiola phoenicis*)	पत्ती की सतह पर छोटे भूरे कत्थई रंग के धब्बे दिखायी देते हैं जो बाद की अवस्था में पत्तियों के दोनों ओर डंठल पर फैल जाते हैं तथा पत्तियाँ पीली होकर गिरने लगती हैं।	रोग प्रबंधन में ग्रसित भागों की काट–छाँट कर जला दे या गाड़ दे तथा ताम्र युक्त कवकनाशी जैसे कॉपर ऑक्सी क्लोराइड (COC) या ब्लूकॉपर का 2–3 ग्राम प्रति लीटर पानी के घोल का 15 दिन के अन्तराल पर दो–तीन बार छिड़काव करें।
7	खामेज रोग (Khamedj) कवक मूंगीनेला वंश की कवक (*Munginella sp.*)	पुष्पक्रम जिसे स्पेडिक्स कहते हैं उसका रोग है तथा लगातार वर्षा वाले क्षेत्रों तथा बिना सार–सम्भाल वाले क्षेत्रों में यह रोग होता है।	इस रोग में पुष्प मंजरी (Spathe) पर भूरा क्षेत्र बनता है तथा बाद में पूरे पुष्पक्रम के आन्तरिक भागों में फैल जाता है । इस रोग का संक्रमण एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर परागकणों द्वारा जाता है। रोकथाम में ऐसे संक्रमित पुष्पक्रमों को तोड़कर जला देना चाहिए व बोर्डो मिक्सर के 1 प्रतिशत विलयन का छिड़काव करना चाहिए।

बेल (BAEL)

वानस्पतिक नाम (Botanical name) : एगेल मॉरमिलोस (एल.) कोर्रिया. *(Aegle marmelos* (L.) Correa.)

कुल (Family) : रूटेसी (Rutaceae)

गुणसूत्र संख्या (Chromosome no.) : 2n = 2x = 18

उद्गम स्थल (Centre of origin) : भारत

फल का प्रकार (Fruit type) : रूपान्तरित सरस एम्फीसारका

खाने योग्य भाग (Edible part) : रसीला प्लेसेन्टा (Succulent Placenta)

बेल को श्रीफल, बेलपत्र, बंगाल क्वींस आदि नामों से भी जाना जाता है। बेल के फल में राइबोफ्लेबिन, विटामिन 'ए' एवं कार्बोहाइड्रेट प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। बेल का औषधीय गुण मुख्य रूप से इसमें पाये जाने वाले मारमेलोसिन (marmelosin) तत्व के कारण होता है। मारमेलोसिन पेट की बीमारियों के उपचार में उपयोग में लिया जाता है। इसके गूदे से शर्बत, स्क्वैश एवं मारमेलेड बनाया जाता है। बेल की पत्तियों को हिन्दू धर्म में शिवजी भगवान को अर्पित किया जाता है।

जलवायु एवं भूमि (Climate & Soil)

बेल इतना सहिष्णु पौधा होता है कि हर प्रकार की जलवायु में भली–भांति उग जाता है। विशेषतः यह शुष्क जलवायु को अधिक पसन्द करता है। इसमें पाले को सहन करने की भी क्षमता होती है। यह फल वृक्ष–7° सेंटीग्रेड तक तापमान को भी सहन कर लेता है। बेल हर प्रकार की भूमि में अच्छी तरह उगता है लेकिन अच्छी खेती व पैदावार के लिए उपजाऊ दोमट मिट्टी अधिक उपयुक्त होती है। यह अम्लीय एवं क्षारीय (5–10 पी.एच मान) भूमि पर भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। यह फल वृक्ष इतना अधिक सहिष्णु होता है कि रेगिस्तान में 2–3 महीने मिट्टी में दब जाने के बाद भी पुनर्जीवित हो जाता है। यह भूमि में 9.0 डेसी सायमन्स प्रति मीटर (dSm^{-1}) तक ही लवणता को भी सहन कर लेता है।

उन्नत किस्में (Improved varieties)

विभिन्न संस्थानों से विकसित किस्में निम्न है।:

1. नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, फैजाबादः– नरेन्द्र बेल–5(एन.बी.–5),एन.बी.–9
2. केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊः– सी.आई. एस.एच.बी.–1, सी.आई.एस.एच.बी.–2
3. जी.बी.पंत कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगरः– पंत उर्वशी, पंत सुजाता, पंत अपर्णा एवं पंत शिवानी
4. केन्द्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर :– गोमा यशी, थार दिव्या व भार नीलकण्ठ

   अन्य किस्मों में कागजी (फल का छिलका कागज जैसा पतला), मिर्जापुरी आदि हैं।

प्रवर्धन (Propagation)

बेल का प्रवर्धन साधारणतया बीज द्वारा ही किया जाता है। बेल का वानस्पतिक प्रवर्धन पैच कलिकायन द्वारा भी सरलता तथा सफलतापूर्ण किया जा सकता है।

पौधे लगाने की विधि (Planting method)

बेल के पौधों का रोपण वर्षा के प्रारम्भ में करना चाहिए । गड्ढों का आकार 75 × 75 × 75 सेमी. तथा एक गड्ढे से दूसरे गड्ढे की दूरी 6 मीटर रखनी चाहिए। वर्षा शुरू होते ही इन गड्ढों को दो भाग मिट्टी तथा एक भाग खाद से भर देना चाहिए। एक–दो वर्षा हो जाने पर गड्ढे की मिट्टी जब खूब बैठ जाए तो इनमें पौधों को लगा देना चाहिए।

खाद एवं उर्वरक (Manure & fertilizer)

साधारणतया यह पौधा बिना खाद और पानी के भी अच्छी तरह फलता–फूलता रहता है, लेकिन अच्छी फसल प्राप्त करने के लिए इसमें उचित खाद की मात्रा उचित समय पर देना आवश्यक है। एक फलदार पेड़ के लिए 500 ग्राम नत्रजन, 250 ग्राम फॉस्फोरस एवं 500 ग्राम पोटाश की मात्रा प्रति पेड़ देना चाहिए। चूंकि बेल में जस्ते की कमी के लक्षण पत्तियों पर आते हैं, अतः जस्ते की पूर्ति के लिए 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट का छिड़काव जुलाई, अक्टूबर और दिसम्बर में करना लाभदायक रहता है।

सिंचाई एवं अन्तःशस्यन (Irrigation & interculture)

बेल का वातावरण के प्रति सहिष्णु होने के कारण किसी विशेष देखभाल की आवश्यकता नहीं होती है फिर भी आरम्भ में जब पौधे छोटे–छोटे होते हैं तो गर्मियों में उनकी महीने में दो बार सिंचाई कर देनी चाहिए। लेकिन जब पौधा फलत में आ जाता है

तो पूरी गर्मियों में 2–3 बार सिंचाई कर देना काफी होता है। थाँवलों को हमेशा निराई–गुड़ाई करके साफ–सुथरा रखना चाहिए।

संधाई व कटाई–छँटाई (Training & pruning)

बेलपत्र में संधाई का कार्य शुरू के 2–3 वर्षो में करते हैं जिसमें यह ध्यान रखा जाता है कि भूमि सतह के 2–3 फीट से कोई शाखा न पनपे तथा बाद में इस मुख्य तने पर 4 शाखाओं का चुनाव करें। काट–छाँट में प्रतिवर्ष सूखी, टेड़ी–मेढ़ी, रोगी आदि शाखाओं को काट कर निकाल दें यह कार्य फल तुड़ाई के साथ ही कर सकते हैं।

पौध संरक्षण (Plant protection)

- बेल की कोमल शाखाओं तथा पत्तियों पर पर्ण सुरंगक (Leaf Minor) का आक्रमण होता है लेकिन इससे विशेष नुकसान नहीं पहुँचता है फिर भी 1 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में क्यूनालफॉस 25 ईसी के छिड़काव से रोका जा सकता है।
- बेल के पेड़ पर रोगों का प्रकोप बहुत कम होता है। एकत्रित फलों के गूदे में कभी–कभी गलन (Internal rot) की बीमारी लग जाती है, जिससे फल अन्दर ही अन्दर खराब हो जाता है इसे कम करने के लिए फलों को सावधानी पूर्वक तोड़ा जाये जिससे इन्हें चोट न लगे तथा 0.3 प्रतिशत डाइथेन जेड 78 के घोल से फलों को तोड़ने के बाद उपचारित करके ठीक किया जा सकता है।
- कभी–कभी फल पकने से पूर्व फट जाते हैं, जो या तो सूक्ष्म तत्वों की कमी से या फिर अनियमित सिंचाई के कारण होता है। फल फटने से रोकने हेतु पोटेशियम सल्फेट 4 प्रतिशत का वर्ष में तीन बार पर्णीय छिड़काव अगस्त, नवम्बर व फरवरी माह में करें तथा फल विकास एवं परिपक्वता के समय नमी का अभाव नहीं होना चाहिए। फलों को श्रींक, पॉली थीन से लपेटकर भी फटने की दर कम कर सकते है।)

तुड़ाई एवं उपज (Harvesting & yield)

बीजू पौधे 7–8 वर्ष बाद फलने लगते हैं लेकिन चश्में से तैयार पौधों में फलत 4–5 वर्ष में शुरू हो जाती है। बेल का पेड़ लगभग 15 वर्ष के बाद व्यवसायिक रूप से फलन में आता है। बेल का डण्ठल इतना मजबूत होता है कि फल पकने के बाद भी पेड़ पर काफी दिन तक लगे रहते हैं। फल ठहराव से फल परिपक्वता में लगभग 10–11 महीने लगते हैं। कच्चे फलों का रंग हरा तथा पकने पर पीला सुर्ख हो जाता है। जब फलों में पीलापन आना शुरू हो जाए उस समय उनको डण्ठल के साथ तोड़ लेना चाहिए। इस तरह के फल 10–12 दिन में अच्छी तरह पककर तैयार हो जाते हैं। दस से पन्द्रह वर्ष पुराने पेड़ से 200–400 फल प्राप्त होते हैं। बेल के फलों का साधारण तापमान पर 2 सप्ताह रखा जा सकता है तथा शीत संग्रहण में 9 डिग्री सेल्सियस तापमान पर 3 माह तक सुरक्षित रख सकते हैं।

महत्वपूर्ण बिन्दु:–

1. फल फसलो का वैज्ञानिक अध्ययन उद्यान विज्ञान की शाखा पॉमोलॉजी (फल विज्ञान) में करते हैं।
2. केले के बीज रहित फल त्रिगुणिता के कारण होते हैं।
3. बेर मे आजकल नई किस्म थाई बेर(एपल बेर), बांग्लादेश से पश्चिम बंगाल के रास्ते भारत आयी है जो आकार मे बढ़ा (हरि सेव) तथा खस्ता बनावट का फल हैं।
4. अमरूद की मुख्य समस्या उखटा रोग है उसे भविष्य में इसी वंश की अन्य जातियों के संकरण सें प्रबंध किया जा सकता है जिनमें सीडियम मोले, सीडियम ग्वाइनेन्स (ब्राजीलियन अमरूद तथा ग्वेनिया अमरूद), सीडियम प्यूमिलम, सीडियम कैटिलियेनम (स्ट्राबेरी या कैटले अमरूद), सीडियम कैटिलियेनम किस्म ल्यूसिडम, सीडियम फ्रीड्रिक्स्थेलियेनम *(चीनी अमरूद)*,सीडियम कुजाविलस व फिजोआ सेलोवियाना (पाइन एपल अमरूद) प्रमुख है।
5. केले का सत्य तना भूमिगत रहता है जिसे राइजोम कहते है।
6. अमरूद में पेक्टिन की प्रचूरता के कारण गुणवता युक्त जैली बनाई जा सकती हैं।
7. नींबू वर्गीय फलों के रस में कड़वाहट उसके लिमोनिन नामक एल्केलाइड के कारण होती है।
8. आम भारत के अलावा पाकिस्तान, फिलिपाइन्स व बांग्लादेश का राष्टीय फल है।
9. पपीता पहला ट्रान्सजेंनिक फल है जिसकी जिनोम क्रम किया गया तथा रिंग स्पोट विषाणु से प्रतिरोधी किस्में सनअप व रेनबो विकसित कि गई है।
10. आँवला में पुष्पन मार्च–अप्रैल के बाद भ्रूण चार माह तक सुसुप्तावस्था में रहने के बाद अगस्त से फल की बढ़वार दिखाई देने लगती है।

अभ्यास प्रश्न

बहुचयनात्मक

1. नर मंजरी हेतु खजूर की उन्नत किस्म बताई है?
   (अ) हलावी (ब) जाहदी
   (स) मेडजूल (द) घनामी
2. गोमायशी, थार नीलकंठ व थार दिव्या नामक किस्में किस फल वृक्ष की है।
   (अ) बेल (ब) बेर
   (स) आंवला (द) खजूर
3. बेल में पुष्पन का समय बताइये।
   (अ) जनवरी–फरवरी (ब) अप्रेल–मई
   (स) अगस्त–सितम्बर (द) दिसम्बर–जनवरी
4. अनार का व्यवसायिक प्रसारण कौनसी विधि से करते हैं?
   (अ) बीज (ब) गूटी
   (स) कलम (द) उत्तक संवर्द्धन
5. आँवले में पुष्पन का समय।
   (अ) जनवरी–फरवरी (ब) मार्च–अप्रैल
   (स) जून–जुलाई (द) अक्टूबर–नवम्बर
6. अंगूर के कौनसे रोग के निदान करने में बोर्डो मिक्सर की खोज हुई?
   (अ) एन्थ्रेक्नोज (ब) फल विगलन
   (स) छाछ्या (द) मृदु रोमिल आसिता
7. बेर का पौधा कब सुषुप्तावस्था में जाता है?
   (अ) शरद काल (ब) ग्रीष्मकाल
   (स) वर्षाकाल (द) उपर्युक्त सभी समय
8. पपीते के पर्ण कुंचन विषाणु जनित रोग का निम्न में से कौनसा प्रमुख कारक है?
   (अ) कवक (ब) माहू (Aphid)
   (स) सफेद मक्खी
   (द) लाल मकड़ी (Red spider mite)
9. अमरूद की लाल गूदे वाली किस्म कौनसी है ?
   (अ) सरदार (ब) ललित
   (स) अर्का अमूल्या (द) पंत प्रभात
10. निम्न में से कौनसी व्याधि केले को सर्वाधिक हानि पहुँचाती है?
   (अ) पनामा विल्ट (ब) शीर्ष गुच्छा
   (स) फिंगर टिप (द) फल विगलन

अतिलघूत्तरात्मक

1. बेल में किस एल्केलाइड़ के कारण औषद्यीय गुण पाये जाते हैं।
2. हीट यूनिट क्या होती है?
3. मृग बहार के फल कब परिपक्व होते हैं?
4. आँवले में उत्तक क्षय रोकथाम में प्रयुक्त रसायन का नाम बताइयें।
5. अंगूर की खेती हेतु भूमि का पी एच मान कितना होना चाहिए?
6. बेर में पौध अन्तराल कितना रखते हैं?
7. कौनसा सूत्रकृमि केले को नुकसान पहुँचाता है?
1. संतरे में पुष्पन व फलन का समय बताइये।
2. संतरे में खाये जाने वाला भाग बताइये ।
10. नींबू के पौध प्रसारण की सरल विधि कौनसी है ?
11. आम की मध्यम फलत वाली किस्में बताइये।

लघूत्तरात्मक

1. खजूर में कृत्रिम परागण पर टिप्पणी लिखो।
2. बेल में फल फटने की समस्या का समाधान।
3. बहार नियंत्रण में हस्त बहार लेने हेतु कौनसी कृषि क्रियाएँ कब करें?
4. आँवले में कीट प्रबंधन।
5. अंगूर की अगेती किस्मों का नाम लिखो।
6. बेर में संघाई व काट–छाँट पर टिप्पणी लिखो।
7. पपीते की नर्सरी की तैयारी व प्रबंधन।
8. अमरूद में उखटा रोग कारण व निवारण।
9. केले की रोपण के बाद के क्रियाकलाप व पौध संरक्षण पर विस्तृत वर्णन करो।
3. नींबू में बहार नियंत्रण पर टिप्पणी लिखो।
4. आम की उत्तरी भारत की प्रमुख संकर किस्मों का विवरण दीजिये।

निबन्धात्मक

1. खजूर की उन्नत किस्में, पौध संरक्षण व तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन पर सविस्तार से लिखो।
2. आँवले की खेती का विस्तृत वर्णन करो।
3. अंगूर में पौध संरक्षण व दैहिक विकारों का वर्णन करो।
4. पपीते में लिंग समस्या व समाधान तथा पपेन निकालने की विधि का वर्णन करो।
5. अमरूद की खेती का वर्णन निम्न बिन्दुओं पर सविस्तार से करो–
   (अ) उन्नत किस्में (ब) प्रवर्द्धन (पौध प्रसारण)
   (स) खाद व उर्वरक (द) बहार प्रबंधन
   (य) उपज व भण्डारण
6. आम के प्रमुख कायिकीय विकारों का वर्णन करें।

उत्तरमाला

1. (द) 2. (अ) 3. (ब) 4. (ब) 5. (ब)
6. (द) 7. (ब) 8. (स) 9. (ब) 10. (अ)